लोक क्रान्ति के आयाम

दादा धर्माधिकारी

Digitized for Preservation
By

Gandhi Research Foundation
Gandhi Teerth, Jain Hills, Jalgaon. 425 001

लोक क्रांति के आयाम

दादा धर्माधिकारी

गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली-११०००२

गांधी शांति प्रतिष्ठान
२२१-२२३, दीन दयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२

मूल्य : १० रुपये

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस
मौजपुर, दिल्ली-११०१५३
में मुद्रित।

थोड़ा दादा के बारे में

१८ जून, १९७८ को दादा धर्माधिकारी अपनी आयु के ७९ वर्ष पूरे कर रहे हैं। यह पुस्तक उनके जन्मदिन पर पाठकों के हाथ में देते हुए हम एक प्रकार की धन्यता का अनुभव कर रहे हैं।

पुस्तक में समय-समय पर लोकतंत्र, लोकक्रांति और लोककला आदि पर दिए गये उनके भाषण संग्रहीत हैं। जो दादा को एक बार भी सुन चुके हैं, वे जानते हैं कि उनका बोला हुआ शब्द, किस प्रकार एक अरसे तक भीतर गूँजता रहता है। कई बार जब वह गूँज किसी शोर-शराबे में विलीन होती-सी लगती है तो मन करता है, उनकी कोई पुस्तक पास होती तो आसपास के शोर शराबे को उसमें डुबकी खिलाकर सद्यस्नात किसी विचार की शोभा से आँखें चार करते। मगर दादा ज़्यादातर बोलते हैं और वह पत्र-पत्रिकाओं में छपकर रह जाता है। पत्र-पत्रिकाएँ एकाएक हाथ नहीं लगतीं। मराठी और हिन्दी में ४-५ किताबें दादा के भाषणों का संचयन करके, अभी तक बनी हैं, जो उनके देय का कोई भी अंश ही नहीं हैं। वे किताबें प्रकाशित भी ऐसे प्रकाशकों ने की हैं जो दादा की ही तरह उस गुण से लगभग अछूते हैं जिसे 'सेल्समैनशिप' कहा जाता है। दादा जो बोलते हैं सो प्रेम की प्रेरणा से। संवेदनशील स्नेही उनका मन, आप उनसे बोलने को कहें और बंद का बंद रह पाये, यह नहीं हो सकता। तो बोलते हैं, और जब बोलना शुरू हो जाता है तो समस्त संयम के तटों में बँधकर जो ओघ प्रवाहित होता है, वह जैसे रोके नहीं रुकता। मैंने दादा को जितनी बार सुना है, मुझे लगा है बोलना समाप्त हुआ नहीं था, दादा ने उसे समाप्त कर दिया। इंशा ने जो अपनी क़लम के बारे में कहा था, वह दादा की वाणी के बारे में ज़्यादा सच है :

ख़ामा कहै है मुझसे कि किस-किस को मैं बाँधूँ
बादल-से चले आते हैं मजमूँ मेरे आगे।

और अध्ययन का यह हाल है कि 'इक तिफ़्ले दबिस्ताँ है फ़लातूँ मेरे आगे'। अफ़लातून दुधमुँहा बच्चा लगता है।

पहली बार दादा को सन् ३२ या ३३ में देखा था। बैतूल में। एक आत्मीय परिवार पड़ौस में रहता था पंडित रामशंकर मिश्र का। रामशंकरजी वक़ालत करते थे और राजनीति के अद्भुत खिलाड़ी थे। उस ज़माने के मध्य-प्रदेश के सारे बड़े कांग्रेसी नेता उनसे सलाह-मशविरा करते थे। तो कभी-कभी कालेज से छुट्टियों में घर आने पर मैं सहज उनके पास चला जाता था और कई बार वहाँ ख़ासे बड़े लोग बैठे दिख जाते थे। उस दिन जब गया तो मिश्रजी घर से बाहर निकल रहे थे। दो-चार क़दम पीछे दादा दिखे। उन्हें पहले कभी देखा नहीं था, न नाम सुना था। आज से कोई पैंतालीस बरस पहले के दादा! छरहरा बदन, खिला रंग, तेजस्वी चेहरा, शरीर पर खादी के खासे मोटे कपड़े, धुले और साफ़; मगर बिना इस्तरी के सिर्फ़ जोर से झटक लिये गये। निगाह उन पर रुकी तो मिश्रजी ने एक वाक्य में परिचय दिया। "ये आचार्य धर्माधिकारी हैं, बड़े अच्छे 'डिबेटर' हैं"। मुझे अच्छा नहीं लगा यह परिचय। सोचा 'डिबेटर' होना आख़िर कौन-सा गुण है। मैंने नमस्कार किया कुछ अन्यमनस्क भाव से और वे लोग चले गये। बात आयी-गयी हो गयी। मगर फिर सन् ३५ में जब मैं वापस बैतूल आया, तब पिताजी घर बदल चुके थे। पड़ौसी थे बल्लाभाऊ धर्माधिकारी। दादा के छोटे भाई। परिचय परस्पर दृढ़ होने लगा और महीने-दो-महीने बाद, दादा आये तो वहीं ठहरे। बात चली तो उन्होंने बुंदेलखंडी में बोलना शुरू कर दिया। बल्लाभाऊ इतने दिनों से पड़ौस में थे, मगर मुझसे कभी बुंदेलखंडी में नहीं बोले थे। दादा का बचपन होशंगाबाद ज़िले में बीता था। पिता मजिस्ट्रेट थे। साथी बच्चे, बुंदेलखंडी। मज़ा ही आ गया। बचपन के उस हिस्से के संस्मरण सुनाने लगे और रोज़ शाम को मेरी दालान ठहाकों से गूँजने लगी। ऐसे हैं दादा! काहे के 'डिबेटर'! ख़ालिस आदमी। प्रेम के हातिम, स्नेह के औढ़रदानी। और फिर मुझे उनका लिखा हुआ पढ़ने को मिलने लगा। वे वर्धा चले गये थे। गांधी सेवा संघ के सदस्य होकर। और काका साहब कालेलकर के साथ गांधी विचार का मासिक 'सर्वोदय' वहाँ से निकालने लगे थे। उसमें वे संपादक के नाते लिखते थे—तो समझ में आया, जिसे विचार करना आ जाता है और भाषा जिसके इशारे पर उठती बैठती है, वह कैसा लिखता है। दादा के बारे में मेरी उत्सुकता बढ़ने लगी। बल्लाभाऊ से उनके बारे में बातें करने लगा। तो मालूम हुआ, दो बेटे हैं चंदू और बबन। बेटी

बिलासपुर के वकील साहब, तामसकरजी को ब्याही गयी है। तामसकरजी से मेरा एक शिविर में परिचय हुआ था। शानदार और सही अर्थों में ईमानदार आदमी थे। दादा की बेटी को नहीं देखा था—मगर सुख हुआ कि उसे कैसा ठीक जीवन-साथी मिला है। फिर चंदू और बबन और बल्लाभाऊ से छोटे भाई गम्पू नाना और उनके चचेरेभाई जो दर्यापुर बरार में रहते थे, मिले। धर्माधिकारियों का एक दूसरा बड़ा परिवार बैतूल में था ही। बाबा साहब धर्माधिकारी। बैतूल के सबसे बड़े वकील, सबसे बड़ा बंगला। उनके बच्चे सब लगभग मेरे हम-उम्र थे। तो घनिष्ठता ऐसी बढ़ी कि कुछ न पूछो। फिर सन् ४२ में बल्लाभाऊ और मैं साथ गिरफ़्तार होकर नागपुर जेल पहुँचे तो वहाँ दादा! खुशी का पारावार न रहा। कह सकता हूँ विनोबा, दादा, डॉ० बारलिंगे, गोपालराव काल, भारतन् कुमारप्पा, किशोरलाल मश्रुवाला के कारण वह जेल एक विश्व-विद्यालय में बदल गया। और दादा के बारे में जो बातें बल्लाभाऊ प्रसंग न निकलने के कारण नहीं बता पाये थे, वे मालूम हुईं। इतना तो मालूम था कि धर्माधिकारी 'मूलतापी' (मुलताई) के हैं। जहाँ से ताप्ती निकली है अब मैं मानता हूँ, एक ताप्ती नहीं निकली है वहाँ से? कुटुम्ब के सारे बुजुर्ग, छोटे-बड़े शंकराचार्य! दादा के घर की तीर्थयात्रा में बल्लाभाऊ के साथ अवसर मिलते ही कर डालता था और उस गुरद्वारे में मत्था टेक आता था। यह भी जानता था कि दादा संस्कृत के विद्वान् हैं और उन्हें दर्शन का व्यासंग रहा है। शिक्षा सारी हिंदी में हुई थी। मगर यह नहीं मालूम था कि वे मेरी तरह 'गणित में 'ढाँ' थे, और तो और इस कारण दो बार फ़ेल हो चुके थे और आंदोलन के दिनों में सरकारी शाला छोड़ देने के बाद मैट्रिक पंजाब से किया था। पंजाब में परीक्षा देने गये थे, वहाँ के किस्से सुनाते थे। साथी विद्यार्थियों की अंग्रेज़ी का उदाहरण देते हुए बताया कि परीक्षाएँ समाप्त होते तक एक विद्यार्थी के पैसे समाप्त हो गये। उसने आशंका में पत्र लिखना तो पहले से ही शुरू कर दिया था, मगर जब दूसरे साथी जाने लगे और उसके पैसे नहीं आये तो उसने पिता को तार किया: "फ़ादर ऑर एनीबॉडी, सेंडिंग मनी ऑर जोकिंग।" बाद में आचार्य 'धर्माधिकारी' का रहस्य बताते हुए कहा कि १९२० के आन्दोलन के दिनों में नागपुर के तिलक महाविद्यालय में 'अंग्रेज़ी हिन्दी और नीति-धर्म-शास्त्र पढ़ाता था।' यह इस तरह कहा जैसे कोई अनाधिकार चेष्टा की हो। जब कि बल्लाभाऊ मुझे बता चुके थे कि दादा का अंग्रेज़ी पर असाधारण अधिकार है। मराठी और हिन्दी में बोलते थे। मगर पढ़ते थे प्रायः सभी बड़े-बड़े अंग्रेज़ी के लेखकों को और अंग्रेज़ी के मार्फ़त् दुनिया के दूसरे बड़े-बड़े लेखकों को भी। उन्हें बर्क, कार्लाइल, शेरेटन, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एनी बीसेन्ट, केशवचन्द्र सेन की रचनाओं

और भाषणों के महत्वपूर्ण अंश कंठस्थ थे। मराठी और हिन्दी में भाषण देते थे, मगर अंग्रेज़ी के तो वे 'ओरेटर' ही थे। बाद में धीरे-धीरे अंग्रेज़ी में बोलना लगभग बंद ही हो गया, क्योंकि श्रोता बदल गये। और संदर्भ बदल गये थे। दादा 'काव्य-शास्त्र-विनोद' के घेरे से गांधी की आँधी में आ गये थे, अब धुआँ-धुआँ जनता के बीच में बोलना पड़ता था। उनके 'डिबेट' और केवल आनन्द के लिए या आग्रह पर धुआँधार बोलने का उपयोगी पहलू अब हाथ लगा; दादा का बोलना कुछ से कुछ हो गया। पहला भाषण मैंने उनका एक पुस्तकालय में सुना था, बैतूल में ही शरद् पूर्णिमा की रात को। भाषा साहित्य और संस्कृति के बारे में। वह अलग बोलना था। मेरे लिए तो 'न भूतो' था ही, अब दादा के लिए भी शायद 'न भविष्यति' है। अब दादा 'बोलने का काम' नहीं करते 'काम का बोलना' करते हैं और वाणी का प्रवाह उन्हें कहीं का कहीं नहीं ले जा सकता—चाहे वह ठाँव किसी अन्य विचार से, कितना ही काम्य क्यों न हो। अब उनके सामने ध्रुवतारे की तरह एक ही बात रहती है—साधारण-जन को उसका क़द कैसे दिया जाये। कोई भी विषय हो, वे इस ख्याल को पेश किये बिना नहीं रहते। प्रेम और समंजस, बुद्धिनिष्ठा उन्हें और किसी अवान्तर धारा में बहने नहीं देते।

वे १९४५ में गांधीजी के कहने से विधान-सभा में भी चले गये थे। मगर चले गए थे बस। वह उन्हें बाँधकर नहीं रख पायी। उन्होंने उसकी ज़ात समझ ली और बाहर आ गए। यह नहीं कि वे लोकतंत्र को कोई निकम्मी चीज़ मानते हैं। काम की मानते हैं—मगर उसके आज के रूप में नहीं।

दादा के पास सब विषयों पर विचार हैं। मगर अपने विचारों का आग्रह उन्हें नहीं है। कभी कुछ परिमार्जन जैसी बात दिख जाती है तो उसे एक अवसर की तरह ग्रहण करते हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि उन्होंने कभी अपने अनुयायी नहीं बनने दिए। क्या जाने इस मामले में वे कृष्णमूर्ति से भी बड़े हैं।

ऊपर जो कुछ कहा है, वह कुछ नहीं कहा है—ऐसा समझिए। दादा के मामले में 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।' स्त्रियों, तरुणों, दलितों, अन्त्यंजों के लिए उनके मन में जो बेचैनी है, वह थोड़ी बहुत इस संकलन में झलकती है। मगर उसे पूरी तरह जानने के लिए तो दादा को पूरा जानना पड़ेगा। कम से कम उन्हें पूरा पढ़ना पड़ेगा जो अभी कहीं उपलब्ध नहीं है।

एक धिक्कार हिन्दी वालों को। विनोबा, काका साहब, धीरेन्द्र मजुमदार और दादा ने हिन्दी को कितना दिया है—विचार और भाषा दोनों की दृष्टि से, मगर ये इनको अपनाने का ख्याल ही अभी तक अपने भीतर नहीं जगा पाये हैं। एक निधि जैसे हमारे तटों पर लहरों में आती है और टकराकर

लौट जाती है। मगर कब तक ? जादू सिर चढ़कर बोलता है। मुझे भरोसा है कि जादू का यह स्वभाव हमें विवश करेगा और एक दिन हम लहरें तो लहरें इनकी छिटकी हुई बूंदों को भी मोतियों की तरह बीनते फिरेंगे।

दादा के जन्म दिवस पर इस किताब का प्रकाशन कर सकने पर गांधी शान्ति प्रतिष्ठान कितने संयोगों का कृतज्ञ है ! उन सबका आभार मानता हूँ। यहीं इतना मनाता भी हूँ कि दादा के तमाम लिखे-बोले को प्रकाशित करने की आवश्यकता और महत्वाकांक्षा भी कभी गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के हाथों पूरी हो और एक अनिवार्य अनुष्ठान सम्पन्न करके वह धन्य बने।

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान
१८ जून, १९७८

— भवानीप्रसाद मिश्र

एक

बुद्धि तटस्थ हो
लोकतंत्र का अधिष्ठान क्या हो ?
मनुष्य अपने कर्मों के लिए जिम्मेदार रहे
प्रतिनिधि नहीं, नागरिक
लोक कौन ?
लोकसत्ता का नाम
आशा का स्थान
कांट्राबेंड-वोटर
रामराज्य, हरामराज्य
चार प्रकार की नागरिकताएँ
देशभक्ति और राष्ट्रीयता
भारतीय राष्ट्रीयता और विश्वनिष्ठा
समानता
मनुष्य के अधिकार स्वयंसिद्ध
आज की प्रतिष्ठाएँ बदलनी चाहिए
क्रांति शांतिमय होगी
शांतिमय क्रांति औज़ार की हो
माओ की क्रांति में कमी
क्रांति के सैनिक उम्मीदवार नहीं होंगे
संपत्ति की आकांक्षा छोड़ो
लोकनायक जयप्रकाशजी का आह्वान

लोक-क्रांति के आयाम

बुद्धि तटस्थ हो

पहली चीज मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह है, कि 'मत' रखना, 'मत' बनाना बुद्धि पर अत्याचार करना है। हमको मत नहीं बनाना है। चीज को समझना है, मत बन जाता है तो बुद्धि क्षीण हो जाती है, फिर हम मत नहीं रखते, मत ही हमको रखते हैं, इसके साथ साथ-एक बात और है। हमारा कोई विशिष्ट विचार नहीं होना चाहिए। किसी एक विशिष्ट विचार का होना अलग है और विचार करना अलग है. विशिष्ट विचार किसी का भी हो, गांधी-विनोबा का भी क्यों न हो, उसकी स्वीकार नहीं करना चाहिए। मनुष्य की बुद्धि विचार करने के लिए सदा खुली रहनी चाहिए, विशिष्ट विचार का आग्रह जैसे-जैसे बढ़ता जाता है सत्य कम होता जाता है, क्यों कि विचार अपना होता है और सत्य सबका होता है। तटस्थ, विनम्र बुद्धि, जिसमें किसी प्रकार का आग्रह न हो ऐसी बुद्धि स्वतंत्र विचार कर सकती है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं कि उनका बहुत प्रयोग होता है। इसलिए फिर उनके अर्थ की तरफ ध्यान नहीं जाता। भाषा में ज्यादातर शब्द ऐसे ही होते हैं कि जिनका अर्थ कोई पूछे तो हम बता नहीं सकेंगे। लॉस्की ने अपनी किताब में लिखा है कि कम्युनिज्म ऐसा ही शब्द है। वह ऐसी टोपी की तरह है जिसको सब लगाते हैं—इसलिए इसका कोई आकार नहीं रह गया है। इसी तरह के जो और शब्द हैं उनमें से क्रांति भी एक शब्द चल पड़ा है। इन शब्दों को बहुत समझने की आवश्यकता नहीं होती। जब स्वराज्य शब्द चला था तब उसकी भी कोई परिभाषा नहीं हुई। परिभाषा का आग्रह करनेवाले अलग थे और स्वतंत्रता

प्राप्त करनेवाले अलग थे। परिभाषा करनेवालों की परिभाषाएँ अब तक समाप्त नहीं हुई हैं—क्योंकि स्वतंत्रता की खोज ही चली है अभी तो। इसी तरह से इस संपूर्ण क्रांति की भी खोज चली है। यह संपूर्ण क्रांति शब्द भी बहुत घिस-पिट गया है। इसीलिए आज मैं लोक-क्रांति विषय ले रहा हूँ। राज्य-क्रांति से लोक-क्रांति भिन्न है। अगर लोक-क्रांति होती है, तो जैसा कि बाइबिल में कहा है एव्हरीथिंग विल बी अँडेड अनटु इट; अगर हम लोक-क्रांति कर सकते हैं तो क्रांति के सारे आयाम अपने आप उसके साथ आ जायेंगे।

लोकतंत्र का अधिष्ठान क्या हो ?

क्रांति की मुख्य खोज यह है, कि लोकतंत्र का कदम लोक-सत्ता की तरफ कैसे बढ़े। लोकतंत्र तब तक चरितार्थ नहीं होता जब तक उसका अधिष्ठान लोक-सत्ता न हो। आपने देखा कि इतने दिनों से हमारे देश में लोकतंत्र है। इससे पहिले भी लोकतंत्र था और लोक-तंत्र के संदर्भ से ही, लोकतांत्रिक मार्गों के नाम पर इस देश में तानाशाही स्थापित की गई। जिसमें कोई खून नहीं बहाया गया, हथियारों की कोई लड़ाई नहीं हुई। शांतिमय उपायों से, संवैधानिक तरीकों के नाम पर इस देश में तानाशाही लादी गई। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है। लोकसत्ता चाहिए। 'लोक' शब्द अधिकतर अव्यक्त समाज का ही द्योतक है, उसे 'वह यह है', ऐसा अंगुलिनिर्देश करके नहीं बताया जा सकता, 'लोक' अनंत है, उसका क्षय कभी नहीं होता, फिर भी, 'लोक'—'पीपुल' केवल एक प्रमेय नहीं है, वह एक भावरूप तथ्य है, परंतु वह व्यक्त वस्तु नहीं है; 'लोक, का व्यक्त या सगुण रूप ही 'व्यक्ति' है। अतः व्यक्ति स्वयंपूर्ण बने इसकी आवश्यकता है। अंग्रेजी में व्यक्ति के लिए 'इंडिविज्युअल' प्रतिशब्द है। इसका अर्थ होता है ऐसी इकाई जिसके हिस्से नहीं किये जा सकते। व्यक्ति संपूर्ण और समग्र ही होता है, इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति भी परिपूर्ण हो और जिस समाज में वह रहता है वह समाज भी पूर्ण हो। इसका अर्थ क्या है?, लोकतंत्र का अधिष्ठाता कौन हो ? अधिष्ठाता से मेरा मतलब उस मनुष्य से है, जो 'सैंक्शन' का प्रतिनिधि है। 'ही हू रिप्रेजेंटस् द सैंक्शन'। लोक तंत्र का सैंक्शन सैनिक हो या नागरिक हो ? कौन इसका अधिष्ठाता हो ? सैनिक अगर अधिष्ठाता रहेगा तो लोकतंत्र का अधिष्ठान शस्त्र-शक्ति होगी, लोकसम्मति नहीं होगी। हमारे लोकतंत्र का अधिष्ठान सैनिक-शक्ति थी, आज भी है। इसीलिए इस देश में नागरिकों के सारे मूलभूत अधिकारों को छीना जा सका। अगर शस्त्र-शक्ति लोकतंत्र की अधिष्ठात्री नहीं होती तो यह असंभव होता। संवैधानिक प्रावधान एक

अलग चीज है, और लोकसत्ता की वास्तविकता बिलकुल अलग चीज है। संवैधानिक प्रावधान केवल अधिकार दे सकते हैं। अधिकारों के उपयोग की शक्ति कोई संविधान नहीं दे सकता। वह शक्ति लोगों में जगानी होती है। इसलिए मैंने कहा कि क्रांति लोक-क्रांति होगी। लोक-क्रांति केवल 'लोक' के लिए क्रांति नहीं है। बल्कि लोक क्रांति वह क्रांति है जो लोक के लिए, लोक के द्वारा और लोक के अपने पराक्रम से याने लोक की होती है। लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में ईश्वर को 'जनतात्मा, कहा है, 'श्रीशाय जनतात्मने,' ज्ञानदेव ने 'विश्वात्मा' कहा, स्वामी विवेकानंद ने और गांधीने 'दरिद्रनारायण' कहा लेकिन तिलक ने जनतात्मा, लोकात्मा कहा। तो इस प्रकार की लोकक्रांति अगर इस देश में करनी है तो नागरिक जागृत होना चाहिए। इस लोकयुग का अवतार नागरिक है, इसका भान उसको होना चाहिए। लेकिन हमारे देश में दो बलि के बकरे हैं। नागरिक ने अपने भले बुरे के लिए दो ऐसे स्थान चुन लिये हैं जिनको वह अपने भले बुरे कामों के लिए जिम्मेदार समझता है। एक है ईश्वर, और दूसरा है सरकार। उसके बेटे को सर्दी हो जाय तो या तो ईश्वर जिम्मेवार है, या सरकार जिम्मेवार है। याने ईश्वर के बाद का स्थान सरकार का है। लेकिन ईश्वर परलोक में है, इसलिए इहलोक में मुख्य स्थान तो सरकार का ही हो जाता है। आज की इस बीमारी का वर्णन एक मिस रॉबर्सन ने किया है। वह बीमारी है, हाइपरट्रॉफी आफ द स्टेट—राज्य संस्था का अति विस्तार, राज्य संस्था की अति वृद्धि ! वह नागरिक जीवन की हर तफसील पर छा गई है। नागरिक जीवन के हर पहलू पर, हर आयाम में उसका प्रवेश हो गया है। नतीजा यह है कि सरकार पर निर्भरता के बिना नागरिक जी ही नहीं सकता है। वह 'पर प्रत्ययी' बन गया है। वह अपना निर्णय नहीं कर सकता है। मैं इसमें मनुष्यता की हानि मानता हूँ।

मनुष्य अपने कामों के लिए जिम्मेदार रहे

देव और पशु भोग-योनियाँ कहलाती हैं। भोग योनियों से मतलब कर्म का उपभोग करने के लिए ही ये पैदा हुये हैं। मनुष्य अपने भले-बुरे कामों के लिए जिम्मेदार है, यही उसकी शान है और यही उसका गौरव है। ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति को भी अपने कर्म की जिम्मेवारी किसी मानवेतर शक्ति पर या किसी संस्था पर नहीं डालनी चाहिए। मैं कितना ही छोटा और क्षुद्र क्यों न होऊँ मेरे कर्म की जिम्मेदारी मेरी अपनी ही होगी। यह जिम्मेबारी या दायित्व जैसे-जैसे कम होता चला जायगा वैसे-वैसे उसकी स्वतंत्रता भी घटती चली जायगी। मनुष्य की विशेषता यह है कि वह अपने जीवन को बदल सकता है। ग़लती

करता है और ग़लतियों को सुधारता है। वह चाहे तो नरक में भी जा सकता है और चाहे तो स्वर्ग में भी और मैं तो उन लोगों में से हूँ जो यह मानते हैं कि मनुष्य को नरक में भी जाने की आजादी होनी चाहिए। दूसरों का दिया हुआ स्वर्ग नरक से भी बदतर है। अपनी मर्जी का नरक स्वर्ग से भी बेहतर है!! इसलिए आज़ादी मुख्य चीज है और इस आजादी का अहसास, इस आज़ादी का अनुभव, इस स्वतंत्रता का प्रत्यय हमारे देश के साधारण नागरिक को होना चाहिए। यह तब होगा, जब वह अपने आपको अपने जीवन के लिए जिम्मेदार मानेगा—अपने जीवन के लिए और अपने पड़ोसी के जीवन के लिए। यही मानवता है। मनुष्य सम्बन्धों में ही जीता है। जहाँ सम्बन्ध नहीं, वहाँ जीवन नहीं। मैं अपने जीवन के लिए जिम्मेदार हूँ और अपने पड़ोसी के जीवन के लिए भी। हम सब एक-दूसरे के जीवन के लिए जिम्मेदार हैं। 'ओल्ड टेस्टामेंट' में एक उल्लेख आता है, आदम के दो बेटे थे—अडॉल्फ और केन, केन ने अडॉल्फ को ईर्षा के कारण मार डाला, उससे पूछा, तुमने क्यों मारा? केन उलटकर पूछता है, क्या मैं अपने भाई का संरक्षक हूँ? इसका जवाब है, 'हाँ, हरएक मनुष्य दूसरे का रक्षक है'। हम सब एक दूसरे के अभिभावक हैं, परस्पर-प्रामाण्य और परस्पर-दायित्व नागरिक-जीवन के मूल आधार हैं। इन चीज़ों के संवर्धन के लिए नागरिक जीवन में पारिवारिक मूल्यों का समावेश करना होगा।

प्रतिनिधि नहीं, नागरिक

वास्तव में स्वतंत्रता वह सिक्का है जिसकी एक तरफ आजादी लिखा है और दूसरी तरफ जिम्मेदारी लिखा है। जहाँ नागरिक गैर-जिम्मेदार है वहाँ कोई भी राज्य कभी जिम्मेवार नहीं हो सकता। वहाँ फिर दो ही तरह के लोग रहेंगे—राज्याकांक्षी और सत्ताकांक्षी, ये दोनों सत्तावादी ही हैं, राज्यवादी हैं, यह स्टेटिज्म है। राज्यवाद एक वस्तु हैं और लोकसत्ता बिलकुल अलग चीज है। राज्यवाद जितना कम होगा, लोकसत्ता उतनी ही विकसित होगी। लोकसत्ता के विकास का यही क्रम है, कि प्रतिनिधि कम होते जायँ और नागरिकों के पास प्रत्यक्ष सत्ता और कारोबार आ जाय। राज्यशासन किसलिए है, लोगों को शासनातीत बनाने के लिए। यह राज्यशासन का शास्त्रीय प्रयोजन है। वैद्यकशास्त्र में रामबाण दवा वह है जिसे एक बार लेने के बाद फिर से दवा लेने की आवश्यकता नहीं रहती। राज्यशासन में वह पद्धति श्रेष्ठ समझी जाती है जिस शासनपद्धति के बाद फिर शासन की आवश्यकता न रहे। नागरिकों में जब एक-दूसरे से भय पैदा होता है तब राज्य-व्यवस्था की आवश्यकता होती है।

राज्यसंस्था एक अनिवार्य आपत्ति मानी जाती है। आज वह अनिवार्य है, इसका तात्पय यह नहीं कि यह हमेशा अनिवार्य बनी रहेगी, मनुष्य के आदर्श हमेशा नैतिक या पारमार्थिक होते हैं, राजनैतिक या अर्थनैतिक नहीं। आज तक हुआ क्या है ! दर्शनमूढ और विज्ञानमूढ लोगों के हाथों में समाज बदलने का काम आया। आज दार्शनिक अलग है, वैज्ञानिक अलग है और नागरिक अलग है। इस प्रकार का विभाजन मनुष्य के व्यक्तित्व को समग्रता की जगह बहुव्यक्तित्व में बदल देता है, यह लोकसत्ता का आधार नहीं हो सकता।

लोक कौन ?

शंकराचार्य ने लोक की बड़ी सुंदर व्याख्या की है—

"लोकयते इति लोकः। लोकयति इति लोकः।" जो दिखाई देते हैं वे लोक, और, जो देखते हैं वे लोक। एक दफा हवाई जहाज में एक नौजवान से मैंने कहा कि मुझे खिड़की के पास बैठने दो, उसने कहा, "बाहर अँधेरा है, क्या देखोगे ?"

मैंने कहा, "अँधेरा ही देखूंगा।",

अब वह हैरान है, बोला "अँधेरा क्या देखोगे ? आँखें बंद कर लो तो अंधेरा ही दिखाई देगा,।"

मैंने कहा, "जिसकी आँखे बंद होती हैं उसे तो प्रकाश भी दिखाई नहीं देता और अँधेरा भी दिखाई नहीं देता",

अँधेरा देखने के लिए भी आँख खुली चाहिए। मेरी आँखों में जो प्रकाश है उससे अँधेरा प्रकाशित होता है। इसे "सत्ता" कहते हैं, अँधेरापन भी प्रकाश की सत्ता होती है, राज्य के पीछे जो शक्ति होती है वह लोगों की शक्ति होती है, राज्य चाहे जितना प्रभावशाली हो, राजा चाहे जितना बड़ा हो, उसका अधिष्ठान हमेशा 'लोकसत्ता' होता है।

लोकसत्ता का नीलाम

दो तरह की लोकसत्ता, आज है। एक का नाम, मैंने रखा है, उम्मीदवारों की लोकसत्ता, दूसरी है नागरिकों की लोकसत्ता। उम्मीदवारों की लोकसत्ता में लोकसत्ता का नीलाम होता है। आप जानते हैं, कि यह जो लोकशाही है, लोक तंत्र है, मैं लोकशाही इसलिए कह रहा हूँ कि इसके लिए मैं स्त्रीलिंग का उपयोग करना चाहता हूँ। यह फ्यूडलिज्म और कैपिटलिज्म की बेटी है। साहूकार की बेटी है, इसलिए बड़ी मँहगी है अभी तक। केपिटलिज्म की दो संताने हैं। एक है डेमोक्रेसी (लोकशाही)। यह उसकी लाड़ली बेटी है, इसलिए बहुत महँगी

है, बाजार में बिकती है। और दूसरी उसकी संतान है—समाजवाद। लेकिन यह मूल नक्षत्र में पैदा हुआ है। उसके लिए मार्क्स ने कहा है कि यह कैपिटलिज्म का ग्रेवडिगर है। इस लोकसत्ता को, लोकतंत्र को बाजार से उठाना है। जब तक पूंजीवाद के संदर्भ में लोकतंत्र रहेगा, तब तक लोकतंत्र बाजार में बिकेगा। मुझे याद आ रहा है, हमारी मराठी भाषा में एक बहुत विख्यात नाटककार हो गये कृष्णजी प्रभाकर खाडिलकर। 'नवाकाल' नाम का जो दैनिक निकलता है, वे उसके संस्थापक थे और पहले संपादक भी। उन्होंने हरिश्चन्द्र की जीवनी पर एक नाटक लिखा है—सत्व परीक्षा। हरिश्चन्द्र जब विश्वामित्र को अपना सर्वस्व दान दे चुके, तो विश्वामित्र ने दक्षिणा माँगी, क्योंकि दान की परिपूर्णता, सांगता, दक्षिणा के बिना नहीं होती। राजा ने पूछा कितनी दक्षिणा चाहिए? विश्वामित्र ने कहा एक हजार मोहरें। राजा ने कहा, कि ये तारामती के गहने ले लीजिए। विश्वामित्र ने कहा, हरिश्चन्द्र कैसा है तू? ये तो सारे मेरे हो गये हैं। तूने तो सर्वस्व का दान कर दिया है। तेरे अंलकार, रोहिताश्व के गहने तारामती के जेवर, अब इसमें से कुछ भी तेरा नहीं रह गया है। तो हरिश्चन्द्र को लगा कि अब क्या करूं। मेरे पास क्या बचा है? तो विश्वामित्र कहने लगे, "ऐसी क्या बात है, निराशा की बात क्यों करता है। तू तो पुरुषार्थहीन मालूम होता है! अरे, भगवान का दिया हुआ यह साढ़े तीन हाथ शरीर तेरे पास होते हुए तू क्यों फिक्र कर रहा है? इस शरीर का उपयोग कर।" तो हरिश्चन्द्र ने सोचा कि किसी जगह जाकर अपने आपको बेचूंगा। शरीर के दो ही उपयोग हैं। एक तो उसके द्वारा परिश्रम करें, या फिर अपने आपको बेचें तो हरिश्चन्द्र अपने को कहाँ बेचें? सारी पृथ्वी का दान कर दिया था। लेकिन हमारे यहाँ पुराने विचारों में, और इतिहास में कुछ अनोखी बातें रही हैं। इसमें से एक अनोखी बात यह है कि काशी किसी राजा की राजधानी नहीं रही। वह विश्व नाथ की राजधानी है—सारी पृथ्वी से अलग। इसलिए उसे देवनगरी कहते थे। वहाँ की लिपि देवनागरी और वहाँ की भाषा देवभाषा। तो हरिश्चन्द्र काशी जाकर वहाँ के बाजार में खड़ा हुआ अपने आप को बेचने के लिए। लोग आये और हरिश्चन्द्र से पूछने लगे, कि क्या काम कर सकते हो? राजा बोल उठा "काम—? मैं तो राजा था, राज्य कर सकता हूँ, जिसको राजा की जरूरत हो वह मुझे खरीदे।" जैसे आज हम लोगों की हालत है। जो नेता हैं, सार्वजनिक जीवन में, यही हालत है उनकी आज। हम अगर कहीं जाएं तो लोग पूछते हैं कि तुम क्या जानते हो? बुक कीपिंग जानते हो? टायपिंग जानते हो? क्या जानते हो? तो हम कहते हैं कि हम सिर्फ़ नेतागिरी करना जानते हैं। जिसको नेता की जरूरत हो वह हमको खरीदे। तो जवाब मिलता है—तुम्हारे लिए दो

ही रास्ते हैं, या तो मिनिस्टर बनो, या फिर भिखारी बनो। तीसरा कोई चारा नहीं है। हरिश्चन्द्र की यही हालत हुई। रोहिताश्व अपनी मां से पूछता है, "आई, माणसे विकणे म्हणजे काय ?" "माँ इन्सान को बेचने का क्या मतलब ? क्या इन्सान बिकता है ?" और वह रो रोकर कहती है, कि बेटा तेरी समझ में नहीं आयेगा। अभी तेरी उम्र नहीं है समझने की। तो जहाँ इन्सान बिकता है, वहाँ भगवान भी बिकता है। यह केपिटलिज्म कहलाता है। इस पूँजीवाद में सिर्फ़ चीज ही नहीं बिकती, सिर्फ जमीन ही नहीं बिकती···यहाँ इन्सान भी बिकता है और भगवान भी बिकता है।

बाजार प्रभावशाली संस्था

साहूकार था एक। हालत कुछ खस्ता हो गई। बुरे दिन आये। तो क्या करें ? घर में एक सोने की मूर्ति थी, गणेशजी की। उसे वह लेकर सराफे में पहुँचा। सराफ से पूछा क्या भाव लोगे ? पुराना जमाना था, उसने कहा २५ रु० तोला लूंगा। उसने कहा, यह तो चूहे का भाव हुआ, लेकिन गणेशजी का क्या भाव दोगे। सराफ कहने लगा कि चूहा और गणेश एक ही भाव है। तब वह कहने लगा, तुझे कुछ तमीज है ? कोई शऊर है ? कैसी बात करता है ? अरे, ये गणेश, देवता है और यह चूहा, क्षुद्र जंतु है। तुझे कोई अक्ल है। दोनों का एक ही भाव बतलाता है—टका सेर भाजी, टका सेर खाजा। तो सराफ कहने लगा कि ये गणेशजी अगर देवता होते तो मंदिर से उठकर बाजार में नहीं आते और यह चूहा क्षुद्र जन्तु होता तो बिल से निकलकर बाजार में नहीं आता। बाजार में आने पर गणेशजी, गणेशजी नहीं रहे और चूहा-चूहा नहीं रहा। कहने का मतलब आज की हमारी डेमोक्रेसी में हर चीज़ का बाजार लगता है। यह पूँजीवाद का अर्थशास्त्र है। पूँजीवादी समाज में बाजार सबसे प्रभावशाली संस्था है इसका जीवन के सभी अंगों पर ज्यादा से ज्यादा प्रभाव पड़ता है। अर्थशास्त्र के दो शब्द हैं 'विक्रय' और 'विनिमय'। चीज के बदले चीज मिले, यह सौदे का स्वरूप है जिसे 'विनिमय, 'बार्टर' कहते हैं। चीज बिके, यह विक्रय है। या तो वस्तु का विनिमय हो या फिर विक्रय—यह बाजार है। बाजार के प्रभाव का सबसे मुख्य स्वरूप यह है, कि हमारे जीवन में काम और श्रम का महत्व कम हो जाता है। विक्रय और विनिमय का दर्शन बाजार की मुख्य चीज है। इस मनोवृत्ति के कारण मनुष्य का बाजार संस्करण, एक बिक्री संस्करण निकला है। ऐसी स्थिति में बाजार में मनुष्य की क्या कीमत है। इसका विचार मनुष्य के मन में आने लगता है। जब तक इन्सान बिकेगा, तब तक लोकतंत्र बिकेगा। इसलिए हमें पूँजीवाद के संदर्भ को बदलना होगा, जब तक हम इस संदर्भ को नहीं बदलते तब तक लोकक्रांति चरितार्थ नहीं होगी।

आशा का स्थान

लेकिन एक आशा हमको पिछले चुनावों से हो गई है। यह हमारा देश चमत्कारों का देश है। ऐसे चमत्कार और कहीं भी देखने को नहीं मिलते।

बरनार्ड शा जब यहाँ आया तो उससे पूछा गया कि तुम यहाँ क्या देखने आये हो ? उसने कहा कि दो चीजें देखने आया हूं। एक ताजमहल और दूसरा गांधी—दो चमत्कार इस देश में हैं। लेकिन इसके अलावा कई चमत्कार पहले इस देश में हो चुके हैं। सबसे पहला चमत्कार है भारत की पराधीनता। ६ हजार मील से डेढ़ लाख लोग आये और उन्होंने १५० साल तक राज्य किया—३० करोड़ लोगों पर। ऐसा चमत्कार इतिहास में कहीं नहीं हुआ होगा। हम भारतवर्ष के लोग ही ऐसा चमत्कार करके दिखा सकते थे। एक अंग्रेज लेखक, सर जोन सीली ने कहा है 'वी सीम टू हैव पीपुल्ड एण्ड कॉन्कर्ड हाफ़ द ग्लोब इन ए फिट आफ एबसैन्स आफ माइन्ड।' हम कुछ गफलत में ही आधी दुनिया में फैल गये और उस पर राज करने लगे। मैं जब मैट्रिक में पढ़ता था शायद तब यह पढ़ा था। मैं सोचने लगा कि अगर गफलत में ब्रिटेन को भारत का राज्य मिल सकता है तो भारत को तो तीनों लोकों का राज्य मिल जाना चाहिए, क्योंकि इतने गफलत बहादुर तो दुनिया में कहीं नहीं हैं। तो भारत की पराधीनता पहला चमत्कार हुआ।

दूसरा चमत्कार तब हुआ जब केरल में मतदान की पद्धति से एक कम्युनिस्ट सरकार कायम हुई। अब तक कोई कम्युनिस्ट सरकार दुनिया में कहीं बैलेट से स्थापित नहीं हुई थी। यह चमत्कार भी हमारे ही देश में हुआ। और तीसरा चमत्कार पिछले मार्च के चुनावों में हुआ—जब इस देश की जनता ने अपना सत्व प्रकट किया। यह भी एक अनोखी बात दुनिया में हुई। ऐसा चमत्कार दुनिया में इससे पहले नहीं हुआ था। ऐसी परिस्थिति में, जिस परिस्थिति में इन्सान बिकता है, उस परिस्थिति में देश के भूखे नंगे मोहताज आदमी ने वोट नहीं बेचा। यह बहस भी व्यर्थ है कि पहले रोटी कि पहले आजादी। क्या दोनों साथ साथ नहीं चाहिए। क्या रोटी के लिए आजादी का सौदा कर लिया जाय अगर मनुष्य को रोटी और आजादी हम साथ साथ नहीं दे सकते हैं, तो हमें खूब समझ लेना चाहिए कि मनुष्य की बुद्धि का दिवाला निकल गया है। क्या मनुष्य की बुद्धि ऐसा कोई तरीका नहीं खोज सकती कि आजादी और रोटी दोनों साथ साथ मिलें और अपने भरोसे मिलें ?

कान्ट्राबेंड वोटर

आज बहुत ही भीषण परिस्थिति है। इस देश में सरकार पर विश्वास नहीं है।

लेकिन जितनी गैरसरकारी संस्थायें हैं उन पर भी विश्वास नहीं है। कम से कम अविश्वास सरकार पर है। इसे मैंने सरकार निर्भरता कहा है और यह समाज परिवर्तन तब तक सत्ता के द्वारा जब तक होगा सत्ता की स्पर्धा चलेगी और तब तक यह लोकतंत्र उम्मीदवारों का होगा, नागरिकों का नहीं। मैं चाहता हूं कि मेरा राज्य हो, आप चाहते हैं कि आपका राज्य हो, इसलिए आप एक उम्मीदवार और मैं दूसरा उम्मीदवार। अब मेरा राज्य किस पर हो ? आप पर। और आपका मुझ पर। तो दोनों एक दूसरे के कंधे पर बैठने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार सत्ता की स्पर्धा, जो पहले केवल राजगद्दी के आसपास थी, अब घर-घर पहुँच गयी, गांव-गाँव पहुँच गयी। यह तो सत्ता की स्पर्धा का विकेंद्रीकरण हुआ। पार्टी भी क्या है आखिर, आर्गेनाज्ड कैन्डीडेचर; संगठित उम्मीदवारी का ही नाम तो पार्टी है न ? जब तक उम्मीदवार ही उम्मीदवार मैदान में होंगे तब तक नागरिक है ही कहाँ ? वाल्टेयर एक दफा पेरिस में प्रवेश कर रहा था। चुंगी के नाके पर जो आदमी था वाल्टेअर की घोड़ा-गाडी में झाँकने लगा कि कोई चीज तो इसमें कान्ट्राबेण्ड (अवैध) तो नहीं है। तो वाल्टेयर, बड़ा मजाकी आदमी था, बड़ा शरारती था। शरारत भरी हँसी से कहने लगा देयर इज नथिंग कांट्राबेंड एक्सप्ट माई सैल्फ। इस गाड़ी में गैरकानूनी सिर्फ मैं अकेला हूँ। उम्मीदवारों की भीड़ ने कांट्राबेंड (अवैध) अगर है तो वोटर है, नागरिक है। लोकतंत्र के लिए उसे सिर्फ राज्यकर्ता ही चुनने होते हैं।

रामराज्य, हरामराज्य

यहाँ की एक सभा में किसी ने कहा था कि गांधीजी तो रामराज्य की बहुत बात किया करते थे और आप लोग तो गांधी की बात मानते हैं न ?, मैंने कहा, मानता तो हूँ। लेकिन गांधी को एक साबित दिमाग का आदमी भी समझता हूँ; गाँधीजी ने रामराज्य की बात कही थी। वह रामराज्य कोई दशरथ के बेटे का राज्य नही था। वह क्या था ? रामराज्य में एक बहुत महत्व की बात थी। गद्दी के हकदार सब थे; लेकिन उम्मीदवार एक भी नहीं था। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—इन चारों को राजगद्दी प्राप्त हुई। लेकिन इनमें से उम्मीदवार कोई नहीं था। तो जहाँ जितने हकदार होते हैं उनमें से कोई उम्मीदवार नहीं होता वह है रामराज्य। और जहाँ जितने हकदार होते हैं उतने सब उम्मीदवार होते हों उसे मैंने नाम दिया है—हराम राज्य। यह उम्मीदवारों का लोकतंत्र है। यह हमारे लिए हितकारी नहीं हो सकता। इसमें नागरिक के पुरुषार्थ के लिए अवकाश नहीं है।

अब उस नागरिक का खोज है। क्या हमारे देश में कोई नागरिक है ?

यह प्रश्न भी कुछ अटपटा है।

चार प्रकार की नागरिकता

(१) सांप्रदायिक नागरिकता

किसी से पूछा जाय, आप कौन है ? तो मैं हिंदू भारतीय हूं, मैं मुस्लिम भारतीय हूँ ऐसा जवाब मिलेगा, 'मैं भारतीय हूँ' ऐसा कोई नहीं कहेगा। पुराने जमाने में एक डाक्टर आलम थे। मुसलमान थे। लाहौर के बैरिस्टर थे। किसी ने इनसे सवाल पूछा, कि आप पहले मुसलमान हैं या पहले हिंदुस्तानी हैं ? मौलाना मुहम्मद अली ने कहा था न, कि मैं पहले मुसलमान हूँ और बाद में हिंदुस्तानी ! तो डाक्टर आलम ने कहा, आपको सवाल पूछना नहीं आता है, ऐसा पूछिए, कि तुम पहले अपनी माँ के हो या पहले अपने बाप के हो ? तो मेरा जवाब यह है, कि मैं अपनी माँ का भी हूँ और अपने बाप का भी हूँ, दोनों का हूँ इसीलिए इन्सान हूँ, इसीलिए आलम हूँ। लेकिन यह चीज चल पड़ी थी। इसे मैं डिनोमीनेशनल सिटीजनशिप सांप्रदायिक नागरिकता कहता हूँ, इस्लामियत ही कौमियत है। हिंदुत्व ही राष्ट्रीयता है। ये नारे है। इसी में से पाकिस्तान आया और पंजाबी सूबा भी आया।

(२) दूसरी नागरिकता है, हाइफनेटिड सिटीज़नशिप। हायफन आप जानते हैं। दो शब्दों को जोड़ने के लिए बीच में जो छोटा सा डैश दिया जाता है उसे हायफन कहते हैं, यह है सामासिक नागरिकता। तुम कौन से भारतीय हो ? मैं महाराष्ट्रीय भारतीय हूं, मैं असमिया भारतीय हूं, मैं बंगाली भारतीय हूं। वह यह नहीं कहेगा कि मैं सिर्फ भारतीय हूं। जिसमें हमारी क्षेत्रीय और और इसी तरह का भाषाएँ आदि या सांस्कृतिक अस्मिताएँ आती हैं और इन अस्मिताओं के कारण आया इस देश में बहुराष्ट्रवाद।

(३) तीसरी नागरिकता है—गौण नागरिकता, सैकेन्डरी सिटीज़नशिप गुजरात में जो अन्य भाषिक रहते हैं वे गौण नागरिक हैं, दोयम नागरिक हैं। महाराष्ट्र में जो अन्य भाषिक रहते हैं, वे महाराष्ट्र के गौण नागरिक हैं। असम में अन्य भाषिक गौण नागरिक हैं, और स्त्रियां तो सारे देश में सेकंडरी सिटिज़न्स हैं हीं; बल्कि सेकंडरी ह्यूमन-बीईंग्ज़-गौण मानव भी हैं। अभी तक स्त्री, मनुष्य ही नहीं बनी है, वस्तु है : चाहे वह प्राईम मिनिस्टर ही क्यों न बन गई हो !

(४) चौथा है, फ्रेक्शनल सिटीज़नशिप; इनको समूचा, संपूर्ण आदमी नहीं माना गया है, एक अंश, टुकड़ा। अस्पृश्य, अछूत आदिवासी इनमें आते हैं।

देशभक्ति और राष्ट्रीयता

जब तक ये चार प्रकार की नागरिकताएं इस देश में हैं, तब तक संविधान में जैसी नागरिकता की व्याख्या की गयी है उस तरह की नागरिकता यहाँ चरितार्थ नहीं हो सकती संविधान में कहा गया है, संप्रदाय-निरपेक्ष, जाति-निरपेक्ष लिंग-निरपेक्ष, भाषा-निरपेक्ष नागरिकता इस देश की होगी। इसे सेक्युलर कहा गया। इस प्रकार की नागरिकता तब तक चरितार्थ नहीं हो सकती जब तक ये चार प्रकार की नागरिकताएँ हमारे देश में हैं और तब तक इस देश में राष्ट्रीयता का विकास भी नहीं हो सकता। एक बात मैं आपसे अर्ज कर देना चाहता हूँ ; हमारे देश में देशभक्ति है, राष्ट्रीयता नहीं है।

भारतवर्ष में १८५७ में और उससे पहले भी कुछ देशभक्त हुए। देशभक्ति से मतलब है पैट्रिऑटिज्म जिस भूमि पर हम रहते हैं, उस भूमि से जो प्रेम होता है वह देशभक्ति है। जो अराष्ट्रीय लोग हैं, उन्हें भी जहाँ वे रहते उस भूमि से प्यार होता है। राजा और जमींदार भी जिस भूमि पर होते हैं उसे प्यार करते हैं। राष्ट्रीयता के लिए देशभक्ति अनिवार्य है, लेकिन देशभक्ति अपने में राष्ट्रीयता नहीं है। पुराने जमाने के देशभक्त परम्परावादी थे। जीर्णमतवादी थे, पुराणमताभिमानी थे। अंग्रेजों के खिलाफ इन लोगों ने उग्र रुख अख्तियार किया था। आज की परिभाषा में उनको प्रतिक्रिया वादी कहेंगे। धर्माभिमानी, संस्कृत्यभिमानी थे, हिंदुओं में और मुसलमानों में भी। मुसलमानों में एक विशेषता यह थी कि मुसलमानों का धर्माभिमान अतिराष्ट्रीय रहा, एकस्ट्रा टैरिटोरियल। इसका कारण यह है, कि उनका मुख्य तीर्थ भारत के बाहर है ही; परंतु उन्होंने यह भी माना कि उनकी संस्कृति भी भारत के बाहर की है; भारतीय संस्कृति को उन्होंने अपना नहीं माना। परिणाम यह हुआ कि उनके रुख में मुख्य सिद्धांत यह रहा कि गैर-मुस्लिम राज्य में रहना हराम है, इसी कारण देशभक्ति की अपेक्षा धर्माभिमान की मात्रा उनमें ज्यादा रही। इधर हिंदुओं में भी जो आत्यंतिक मतवादी थे, उग्रमतवादी थे, उनमें देश की अपेक्षा धर्म की भावना विशेष प्रखर थी, प्रबल थी। वह भी यह मानते थे कि म्लेच्छों के राज्य में रहना हराम है, गोमांस-भक्षकों के राज्य में रहना हराम है; लेकिन मुसलमानों के राज में वे रह चुके थे इसलिए उनमें उतनी उग्रता नहीं थी। स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास की एक विशेषता यह थी, कि जो राजनीति में उग्रमतवादी थे, वे थे समाज-सुधार के विरोधी, जो समाज-सुधार के पुरस्कर्ता थे, वे राजनीति में सौम्य मतवादी थे। सन १८७७ के लगभग महाराष्ट्र में एक अनोखा सशस्त्र क्रांतिवादी पुरुष प्रकट हुआ। वासुदेव बलवंत फडके।

वासुदेव बलवंत की विशेषता यह थी कि सशस्त्र क्रांतिवादियों में सबसे पहले उसने कहा कि हमको प्रजासत्तात्मक राज्य चाहिए। इसी समय एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना देश के इतिहास में हुई। १८७७ में पहला अखिल भारतीय दौरा हुआ और वह सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने किया। मैं इसे पहला अखिल भारतीय दौरा कहता हूँ, इसलिए कि इससे पहले जो दो अखिल भारतीय यात्राएं हुई एक आद्य शंकराचार्य की, और दूसरी महर्षि दयानन्द की, वे दोनों धर्म-मत की संस्थापना के लिए थीं। लेकिन सुरेंद्रनाथ बनर्जी एक ऐसा नागरिक था जो राजा नहीं था, सेनापति नहीं था। उसका दौरा धर्म प्रचार का नहीं था अखिल भारतीय लोक जीवन से संबद्ध था। उस जमाने के एक और देशभक्त का नाम लिया जा सकता है। दादा भाई नौरोजी। इस देश के वे शिरोमणि थे, ऐसा कह सकते हैं। जिसे आप खालिस देशभक्ति, विशुद्ध देशभक्ति कहते हैं, उसकी वे मूर्ति थे। जिसमें धर्म, भाषा, जाति, संप्रदाय संस्कृति किसी की मिलावट नहीं, ऐसी देशभक्ति के वे प्रतीक थे। इस प्रकार की विशुद्ध देशभक्ति इस देश के पारसियों में रही। यह एक जमात है जिसमें विशुद्ध नागरिकता रही। उस नागरिकता का कोई विशेषण नहीं रहा। सामासिक नागरिकता, गौण नागरिकता, किसी प्रकार की विशिष्ट सांप्रदायिक नागरिकता, आंशिक या दोयम नागरिकता इन पारसी नागरिकों में नहीं रही। उनके अग्रणी पितामह दादा भाई नौरोजी थे। इसलिए वे तीन बार कांग्रेस के अध्यक्ष हुए।

तो स्वातंत्र्य प्राप्ति से पहले हमारे देश में देशभक्ति युक्त राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता दिखाई देती थी वह आज टूट गयी है, ऐसा अनुभव हो रहा है। राष्ट्रीयता क्या है इसका फिर से विचार करना होगा। राष्ट्रीयता की पुरानी कल्पना आज गतकालीन हो चुकी है। हर एक देश अपनी शक्ति बढाये और भले ही सारे संसार पर अपना वर्चस्व कायम न कर सके तो भी अपना प्रभाव डाल सके ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना उन्नीसवीं सदी का राष्ट्रवाद है। इस पुराने राष्ट्रवाद का परिपाक साम्राज्यवाद में हुआ और उसकी ही कोख से; लेकिन मूल नक्षत्र पर समाजवाद का जन्म हुआ। उस समाजवाद ने पुराने राष्ट्रवाद को नकार दिया। उस पुराने राष्ट्रवाद का निषेध आधुनिक क्रांतिकारियों ने किया है, केवल दो प्रमुख व्यक्तियों को छोड़कर हिटलर और मुसोलिनी। ये दोनों 'फासिज्म' और 'नाजीज्म' के आद्य प्रवर्तक थे। इन दो शब्दों का विनोबाजी ने मराठीकरण किया है। फासीज्म—फाशीवाद (फाँसीवाद); नाजीज्म—नाशीवाद (विनाशवाद)। आज परिस्थिति ऐसी है कि किसी भी एक देश की समस्या उस देश की अकेले की नहीं रह सकती है। इसलिए यदि

किसी को ऐसा लगता हो कि वह पुराना राष्ट्रवाद इस देश में पुनरुज्जीवित किया जा सकता है, तो यह मानना होगा कि कम से कम सौ साल पहले के जमाने में जी रहा है।

तो राष्ट्रीयता की आधुनिक कल्पना क्या है ? अब राष्ट्रवाद नहीं रहा, राष्ट्रीयता है; नेशनलिज्म नहीं, नेशनैलिटी है। यह नेशनैलिटी क्या है ? 'दी एक्जिस्टेंस ऑफ ए नेशन इज ए डेली प्लेबिसाइट, जस्ट एज द एग्जिस्टेंस आफ़ एन इन्डिवीज्युल इज़ ए कन्टीनुअल अफरमशन ऑफ दी बिल टू लिव'। राष्ट्र अस्तित्व में है इसका अर्थ यह है कि मानो लोगों का प्रतिक्षण सार्वमत लिया जा रहा है। आगे उसकी मिसाल दी है। मनुष्य जीता है याने प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के साथ जीने का संकल्प प्रकट होता रहता है। जिस देश के लोग एक-दूसरे के साथ रहना चाहते हैं और वैसा संकल्प करते हैं उस देश में राष्ट्रीयता है।

भारतीय राष्ट्रीयता और विश्वनिष्ठा

इसमें एक दूसरी की बात है। यदि हम यथार्थ भारतीय राष्ट्रीयता निर्माण कर सकें तो उस भारतीय राष्ट्रीयता में और विश्वनिष्ठा में कोई गुणात्मक अंतर नहीं रहेगा। इन दो चीजों में साधर्म्य है। वह क्यों है ? हमारे देश में जितनी विविधताएँ हैं उतनी संसार में अन्यत्र कहीं नहीं हैं। समूचे संसार में जो विविधताएँ हैं, उन विविधताओं के सभी प्रकार इस देश में हैं। काले-गोरे का भेद है, आदिवासी-नागरिक का भेद है, ब्राह्मण-भंगी का भेद है, भाषा-भेद हैं, संप्रदाय-भेद हैं; पोशाक के और रहन-सहन के अनंत प्रकार हैं। इस देश का इतना बड़ा आकार और सत्तर करोड़ लोग। हमसे बड़ा केवल एक चीन ही है, लेकिन जितने भेद हमारे देश में हैं उतने चीन में नहीं हैं। इसलिए संसार का विश्रुत प्रमुख इतिहासकार, आरनॉल्ड टौयनबी कहता है—'इंडिया इज ए होल वर्ल्ड प्लेस्ड एट क्लोज क्वार्टर्स' संसार के समस्त मनुष्यों के नमूने छांटकर भगवान ने एक जगह रख दिये हैं और उस जगह का नाम भारत है। इसलिए भारतीय एकता का विचार ही जागतिक एकता का विचार है।

मैं हमेशा उदाहरण दिया करता हूँ, उसको ठीक समझने की जरूरत है। कहा जाता है, कि इंटेलैक्युअल्स की सभा है, लेकिन, 'इंटेलैक्चुअल्स ऑर नॉट ऑलवेज दी इन्टैजेन्शिया' इनटेलिजेन्शिया एक अलग चीज है। 'इनटलेक्चुअल्स तीन तरह के होते हैं। कुछ बुद्धिनिष्ठ, कुछ बुद्धिवादी और कुछ बुद्धजीवी होते हैं। बुद्धिजीवी बुद्धि का व्यापार करते हैं। बुद्धि बेचकर खाते हैं। उनकी बुद्धि पैसा देनेवाले के अनुकूल होती है। बुद्धिवादी वे होते हैं जो दूसरे की बुद्धि को परास्त

करना चाहते हैं। दूसरे की बुद्धि पर उनका विश्वास नहीं होता; और बुद्धिनिष्ठ वे हैं जो अपनी बुद्धि से दूसरे की बुद्धि पर कुछ अधिक भरोसा करते हैं। तो आप लोगों के बीच मैं बैठा हूँ। अभी अभी एक पुस्तक का रिव्यू अखबार में देख रहा था। उसमें लिखा था, 'इक्वालिटी इज़ ए मिथ' समानता एक मिथ्या कल्पना है। तो मुझे याद आया। ऑर्वेल का नाम आपने भी सुना होगा। उसने दो किताबें लिखी हैं। एक है १९८४ और दूसरी है, एनिमल फार्म। यह एनिमल फार्म पुस्तक उसने ऐसी सुंदर लिखी है, कि मेरे हाथ में अगर नोबेल प्राईज देना होता तो मैं उसको दे देता। उसकी बात मैं अपनी भाषा में रख रहा हूँ।

समानता

जानवरों का एक फार्म था। तरह तरह के जानवर उसमें रहते थे। एक दफा उन जानवरों के मन में आया, कि हम एक-दूसरे के साथ ठीक तरह से रह सकें इसलिए एक संविधान तैयार करें। तो फिर उन्होंने एक कॉंस्टियूशनल असेंब्ली कायम की। अब, असेंब्ली में पहले प्रीअँबल आया—'दी दी एनीमल्स ऑफ दिस फार्म एसैम्बल्ड इन दिस कान्स्टीट्यूशनल असैमब्ली गिव अन्टु अवरसैल्वज दिस कान्टीट्यूशन।' इसके बाद पहला आर्टिकल आया। 'नो एनिमल शैल किल एन अदर एनिमल'। सभा में बिल्ली बैठी थी। खड़ी हो गयी कहने लगी, मैं चूहों को नहीं खाऊँ तो फिर क्या खाऊँगी ? क्या कल से मैं चूहे खाना बंद कर दूं ? इतने में शेर खड़ा हो गया। और बोला, तुम कहना क्या चाहते हो ? मैं बकरा खाना बंद कर हूँ ? इस तरह एक-एक करके कई जानवर खड़े होने लगे। तो पहला अमेंडमेंट पहला संशोधन आया—नो एनिमल शैल किल एन अदर एनिमल विदआउट कॉज़—इस तरह पहला आर्टिकल समाप्त हो गया। क्योंकि कारण तो सभी के पास था। कोई खाने के लिए मारता है तो कोई झगड़े के लिए।

अब दूसरा आर्टिकल आया—'आल एनिमल्स आर ईक्वल'। सब प्राणी समान हैं। तब हाथी खड़ा हो गया। कहने लगा, क्या मैं और यह सुअर समान हैं ? घोड़ा खड़ा हो गया। कहने लगा, क्या यह खच्चर और मैं बराबर हैं ? कहना क्या चाहते हो ? क्या यही कांस्टिट्यूशन है ? किस तरह की कांस्टिट्यूशन बना रहे हो ! तुम्हारे बाप-दादा ने बनायी थी कांस्टिट्यूशन ? तो फिर दूसरा संशोधन आया—'आल एनिमल्स आर ईक्वल बट सम आर मोर इक्वल दैन अदर्स'; इस तरह से दूसरा आर्टिकल भी समाप्त हो गया।

मनुष्य के अधिकार स्वयंसिद्ध

कहने का मतलब यह है, कि संविधान नागरिक का ही बनाया होता है। जो संविधान में दिये गये होते हैं उतने ही अधिकार नागरिक के नहीं होते हैं। संविधान के दिये हुए अधिकार औपचारिक होते हैं। इसके अलावा उसके जो अधिकार होते हैं वे इनहैरेन्ट—स्वयंसिद्ध होते हैं, मनुष्यता, और नागरिकता के कारण ही जो उसको प्राप्त हैं। मुझे मालूम नहीं, कि वकील और ज्यूरिस्ट उनको कौनसा नाम देंगें। इन अधिकारों का प्रत्यय नागरिक को होना चाहिए।

आज की प्रतिष्ठाएँ बदलनी चाहिए

नागरिक की शक्ति कहाँ है, इसकी भी खोज होनी चाहिए। आज शक्ति के जो तीन स्थान माने गये हैं, जो शक्ति की तीन प्रतिष्ठाएँ मानी गयी हैं, वे हैं—तख्त (सत्ता), तिजोरी (संपत्ति) और तलवार (शस्त्र) यानी सरकार, साहूकार और सिपाही। ये तीनों आज समाज में प्रतिष्ठित हैं। इन तीनों को बदलना होगा। यही क्रांति है। यह वर्ग-समन्वय नहीं हैं। यह वर्ग-निराकरण की प्रक्रिया है। ये तीनों सत्ताएं ऐसी हैं जो मिथ्या है। इनमें से कोई शक्ति असलियत नहीं रखती। किसी राजा ने अपना तख्त बनाया था? किसी साहूकार ने अपनी तिजोरी बनायी? किसी सिपाही ने अपनी तलवार बनायी? तख्त, तलवार, तिजोरी—तीनों को बनाने वाला वह है जिसके हाथ में औजार है। लेकिन आज वह भ्रम में है।

मुझे बतलाइए, औजार के बिना हथियार बन सकता है? इन चीजों को मार्क्स ने पहिचाना-देखा। इसलिए मैं उसे क्रांति का पहला पैगम्बर मानता हूँ। सबसे पहिले उसने कहा, कि एक दिन ऐसा आयेगा जब दुनिया में हथियार भी नहीं रहेंगे और लड़ाई भी नहीं होगी। यह किसी धर्म संस्थापक ने नहीं कहा। किसी विचारक ने नहीं कहा। इस बात को खूब समझ लीजिए कि मार्क्स ने पते की बात कही और यह चीज सबने मानी।

लेकिन आज किसी साधारण मनुष्य का जिसके हाथ में औजार है—अपने औजार पर विश्वास नहीं रहा है। विद्यापति का विद्या पर विश्वास नहीं रहा। कलमवाले का अपनी कलम पर विश्वास नहीं रहा है। उत्पादक का अपने उत्पादन के साधन पर विश्वास नहीं है। ये सब तलवार से घबराते हैं, तिजोरी से लुभा जाते हैं, तख्त से आकर्षित हो जाते हैं। जिन पर इन तीनों का प्रभाव नहीं रहा, वे क्रांतिकारी बने। साधारण मनुष्य इनके प्रभाव से ऊपर उठेगा, इतिहास के परिणामों से ऊपर उठेगा तभी वह क्रांति कर

सकेगा। अब इस साधारण मनुष्य को इतिहास का विषय नहीं रहना है, इतिहास का विधाता बनना है।

मैं उदाहण दिया करता हूँ तीन झण्डों का। कांग्रेस, समाजवादी, और कम्युनिस्ट तीनों के झंडे आप लीजिए। इनपर निशानियाँ (सेम्बल्स) क्या हैं ? कौन से प्रतीक हैं ? रिवोल्यूशन में कुछ प्रतीक हुआ करता है। तो ये तीन प्रतीक हैं। कांग्रेस का चर्खा, समाजवाद का हलधर है आजकल; तीसरा कम्युनिष्टों का झण्डा। कम्युनिस्टों को लोग कहते हैं कि ये वायलेंस को नर्स माननेवाले है अपने रिवोल्यून की। तो भाई, उन्होंने अपने झंडे पर भीम की गदा क्यों नहीं रखी ? शिवाजी महाराज की भवानी तलवार रखते या रामचंद्रजी का धनुष रखते, लेकिन इन्होंने भी हँसिया और हथौड़ा रखा है। संकेत यह है, कि क्रांति में औजारों की प्रतिष्ठा रहेगी, हथियार की नहीं।

क्रांति शांतिमय होगी

यह हिंसा-अहिंसा का सवाल नहीं है। हिंसा-अहिंसा को भूल जाइए, सद्गुणों को सिद्धान्त मत बनाइए। जिस दिन सद्गुणों को सिद्धान्त बनायेंगे उस दिन वे सिद्धान्त रह जायेंगे और सिद्धान्तों को लेकर ही आदमी एक दूसरों को काटेंगे। अहिंसा के लिए तलवार चलेगी। कांसेप्टस् मत बनाइए सद्गुणों के। यह मनुष्य के जीवन की शर्त है। औजार के बिना तलवार भी नहीं बन सकती, तख्त भी नहीं बन सकता और तिजोरी भी नहीं बन सकती। लेकिन सबको बनानेवाला औजार आज मुँहताज है, दबा हुआ है। औजार जिसके हाथ में है वह परेशान है। उसको जगाने की आवशकता है, कि शक्ति तुझ में है। तेरे बनाये हुए ये सब हैं। यह अहसास उसको दिलाना चाहिए। इसके बदले हम उसको यह कहते हैं कि तेरी जीत तब होगी जब तेरे हाथ में तलवार आयेगी। तेरी जीत तब होगी जब तेरे हाथ में तिजोरी होगी और तेरे हाथ में तख्त आयेगा। अरे, तख्त, तिजोरी, तलवार तेरे हाथ में आयेगी तो तू राजा, साहूकार, सैनिक सभी बन जायगा। तू औजारवाला नहीं रहेगा। इसलिए इस क्रांति की शर्त यह है कि यह शांतिमय होनी चाहिए। इसलिए नहीं कि अहिंसा कोई सिद्धान्त है। एक जगह राधाकृष्ण की भाँति सत्य और अहिंसा की मूर्तियों का मंदिर बना है। अहिंसा के हाथ में गदा है। किसलिए गदा है ? इसलिए कि शस्त्रों का उपयोग शांति के लिए होना चाहिए। और इसका यह प्रतीक है। शांति यदि शस्त्रों के शरण में जायेगी तो क्या शांति शांति रहेगी ? तब तो सत्ता शस्त्र की होगी, शांति—अहिंसा की नहीं। अहिंसा को भी यदि गदा की शरण लेनी पड़े तब तो जिसकी गदा बड़ी होगी उसकी अहिंसा श्रेष्ठ होगी।

इसमें अहिंसा तो कहीं रही ही नहीं। यह गदा युद्ध हो जायगा।

एक प्रसंग मुझे याद आता है। पंजाब के एक शहर में मैं भाषण करने गया था। सभा के अध्यक्ष वहाँ के एक जाने-माने व्यक्ति थे। सभा काफी बड़ी थी। लोग शोर कर रहे थे। सभापतिजी खड़े हो गये। बोले, 'हिंदुओ-बिंदुओ, सिक्खो-मिक्को, मुस्लिमो-चुस्लिमो ! खामोश हो जाओ। कोई जरा भी गड़बड़ करेगा तो यह मेरे हाथ में डंडा है। अब दादा धर्माधिकारी का अहिंसा पर भाषण होगा।' उन दिनों सभाओं में गांधी और अहिंसा के खिलाफ कोई बोल नहीं सकता था। घूंसे चलते थे। अहिंसा ने आतंक मचा दिया था। सत्य, अहिंसा कोई सिद्धान्त नहीं हो सकते।

शांतिमय क्रांति औजार की ही

जो लोग शस्त्र की बात करते हैं, वे कम से कम सौ साल पीछे है। यह अद्यतन विचार विचार नहीं है, अद्यतन क्रांति वह है जो औजार के अनुकूल हो। औजार जिसके हाथ में हो उसकी क्रांति शांतिमय क्रांति होगी। जब तक सिपाही आगे था, इमरजेंसी में, तब सब दबे हुए थे। मुझे तो इन विद्यार्थियों पर दया आती है। आज ये वाइस-चांसेलर का घेराव करते हैं। जहाँ देखो उपद्रव ही उपद्रव है। मुझे कभी-कभी आश्चर्य होता है कि ये सब के सब कहाँ गायब हो गये थे, काफूर हो गये थे उस इमरजेंसी के वक्त ! कहीं पता ही नहीं चलता था इनकी तरुणाई का। रॉयट और इंसरेक्शन में से क्रांति नहीं होती। दुनिया में कहीं किसी प्रेशर ग्रुप ने कभी क्रांति नहीं की है। प्रेशर ग्रुप, इंटरेस्टेड ग्रुप होता है। क्रांति नागरिक करेगा। और वह नागरिक क्रांति करेगा जिसके हाथ में औजार होगा। क्रांति सिर्फ अपने लिए नहीं, सबके लिए करेगा। क्योंकि उसमें शक्ति है। वह जीवन की उपयोगी वस्तुएँ बनाता है। हथियार जीवन का हरण करता है। जीवन का हरण, यही हथियार का सदुपयोग है। औजार जीवन देता है। जीवन देना यह औजार का सदुपयोग है और जीवनहरण उसका दुरुपयोग है। इसलिए क्रांति जो औजार की होगी वह जीवनदायी क्रांति होगी। वह लोकक्रांति होगी। क्रांतिकारी आंदोलन की एक पहचान आपको बतला दूं। क्रांतिकारी आंदोलन वह आंदोलन है जिसमें साधारण मनुष्य आतंकित न हो। इन सारे दंगों से, उपद्रवों से क्या होगा, एक के बाद दूसरा राज्य आयेगा और नागरिक जहाँ का तहाँ रह जायगा।

आज वस्तु खरीदनेवाले को मिलती है। सत्ता तिजोरी की चलती है। कल जिसके पास डंडा होगा उसे चीज मिलने लगेगी। तो फिर गरजमंद को कुछ नहीं मिलेगा। तिजोरी का पूंजीवाद गया और तलवार का डंडावाद आया। नागरिकों की क्रांति का क्या अर्थ है ? हथौड़े-हँसिये की क्रांति; कुदाली-

कुल्हाडी की क्रांति; चरखे और करघे की क्रांति। औजारों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए और औजारों से ही क्रांति होनी चाहिए। इसीलिए हम श्रम-शिविर चलाते हैं, सेना-शिबर नहीं।

माओ की क्रांति में कमी

संसार के इतिहास में किसानों की पहली क्रांति हुई माओ की उससे पहले किसान को किसी क्रांति में शामिल नहीं किया गया था। लेकिन माओ भी क्रांति से एक कदम पीछे रह गया इसलिए कि उसका किसान जवान बन गया। जवान बनने पर किसान किसान नहीं रह जाता। भूल में संकल्प क्या है ? क्रांति के बाद हथियार नहीं रहेंगे; औजार रहेंगे। इसलिए क्रांति करते समय भी इसका खयाल रखना होगा कि हथियारों की नहीं औजारों की प्रतिष्ठा समाज में बढ़े।

क्रांति के सैनिक उम्मीदबार नहीं बनेंगे

एक दफा दो मैजिस्ट्रेट बिना लाइट सायकल पर जा रहे थे। अब पुलिसवाले ने देखा और उनको टोका। साहब, नाम बताइए। नाम बताये। पहचान गया कि ये मैजिस्ट्रेट हैं। कहा, आप अपने घर जाइए। कल पेशी होगी। घर गये और आपस में सलाह की कि कल तेरा मामला मेरे सामने चलेगा और मेरा मामला तेरे सामने। दूसरे दिन पहिला मैजिस्ट्रेट खड़ा हुआ अपराधी बनकर जज बने मैजिस्ट्रेट ने पूछा, कल आप बिना बत्ती सायकल पर जा रहे थे ? जी हां। आप जानते हैं, यह गुनाह है ? जी हां, पता है। एक रुपया जुर्माना कर दिया। फिर दूसरे की बारी आयी। पहला बैठा कुर्सी पर। फिर वही सवाल पूछे गये। जी हाँ, मैंने गुनाह किया है। दस रुपया फाइन। क्यों भाई ? मैंने तो एक ही रुपया तेरे ऊपर किया और तू दस रुपये मेरे ऊपर क्यों कर रहा है ? वह कहता है, तुमको मालूम नहीं, यह एक ही दिन में दूसरा गुनाह हुआ है और करनेवाला मैजिस्ट्रेट है। इसलिए यह डिटेरंट पनिशमेंट है। तो राजनीति में यही चलता रहेगा और नागरिक वहीं का वहीं रह जायगा। इसलिए नागरिक की सत्ता चरितार्थ होनी चाहिए। और इसके लिए ऐसे तरुण-तरुणियों की आवश्यकता है जो कभी स्वयं उम्मीदवार नहीं होंगें। जयप्रकाश का जीवन और महत्ता जो कुछ रही हो सो रही हो, लेकिन इतने बड़े कद का वह एक ही नेता है जो कभी उम्मीदवार नहीं हुआ। और इसलिए वह लोकनायक बना। पहले वह एक पार्टी का नेता था। लेकिन विनोबा के आंदोलन की भट्टी से निकला और लोकनायक बन गया। जयप्रकाशजी का लोकनायकत्व विनोबा के आंदोलन का वरदान है। तो पहली शर्त यह है कि जो तरुण-तरुणियाँ क्रांति-

कारी बनना चाहें उनको सत्ता की आकांक्षा छोड़ देनी होगी, और कहीं की भी उम्मीदवारी, कॉलेज की भी, छोड़ देनी होगी।

बिहार में अभी मैं गया था। वहाँ कॉलेज का इलेक्शन हुआ। उसके कैंडिडेट का इश्तेहार, अॅडवरटिजमेंट सीलोन के रेडियो में निकला। अब यह साबुन और तरह तरह की चीजें बिकती हैं वैसे हर उम्मीदवार का नीलाम होता है। यह सब तरुणों को, क्रांतिकारी तरुणों को छोड़ना होगा।

संपत्ति की अकांक्षा छोड़ो

एक और चीज है, संपत्ति की आकांक्षा। बिहार में पांच हजार विद्यार्थियों की परिषद हुई। मुझे बुलाया। मुझसे कहा गया कि हमारे पास तो जमीन नहीं है तो भूदान नहीं दे सकते। संपत्ति नहीं है तो संपत्तिदान नहीं दे सकते। पढ़ते हैं तो समयदान भी नहीं दे सकते। तो फिर हम क्या करें ? कोई कार्यक्रम हमको बताइए। सो मैंने कहा, कार्यक्रम तो बता सकता हूँ, लेकिन आप बुरा मानेंगे। कहने लगे, नहीं मानेंगे। मैंने कहा, आप अपने गार्डियन्स को, अपने पिता को लिख दें, कि आज से हमारा संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। तो सेक्रेटरी ने धीरे से कहा, कि हमने ग़लत आदमी को बुला लिया। तरुण जब तक संपत्ति की आकांक्षा नहीं छोडेंगे तब तक कुछ नहीं होगा। क्रांति के मूल्य तुम्हारे अपने जीवन में चरितार्थ होने चाहिए। जो सत्ता और संपत्ति की होड़ में शामिल होता है, वह सत्ता और संपत्ति का निराकरण नहीं कर सकता। जो व्यक्ति संपत्ति की होड़ में शामिल है वह सार्वजनिक संपत्ति के बारे में विश्वासपात्र नहीं माना जायगा। ऐसे ही जो सत्ता की होड़ में खड़ा है वह भी क्रांतिकारी नहीं रहता। वह लोकशिक्षण नहीं कर सकता। वह अपने लिए मत माँगेगा। लोगों को महत्त्व समझाने की चिंता उसको नहीं रहेगी। बड़े प्रभावशाली शब्दों में वह लोगों से कहेगा, 'मतदाताओ, जनतंत्र में मत का महत्त्व उतना ही है, जितना कि नारी के लिए उसके सतीत्व का है, जितना कि एक स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए उसके ईमान का महत्त्व है, जितना कि एक धर्मनिष्ठ मनुष्य के लिए उसके धर्म का महत्त्व है···।" लोग कहेंगे बिलकुल ठीक कहता है। लेकिन इतना सब कहने के बाद वह यह कहे, कि, इसलिए आप अपना कीमती वोट मुझे ही दें', तो लोग कहेंगे, कि इसकी सारी रामायण मुठ्ठीभर चावल के लिए ही थी। लोगों पर उसके शब्दों का कोई असर नहीं होगा। तो सत्ता, संपत्ति की आकांक्षा छोड़ेंगे और शस्त्र का भय छोड़ेंगे तो आपको क्रांति में सफलता मिलेगी। आखिर वही खाडिलकर याद आते हैं। उनके नाटक का वह प्रसंग याद आता है। डोम के यहाँ हरिश्चंद्र नौकरी कर

रहे हैं। वे राजा थे। लकड़ी चीरें तो कितनी चीरें, चीरते बनता नहीं था। तो रोज हर्जा होता था। एक दिन डोम ने कहा, हरिश्चंद्र, अब सिर्फ दो रोटियां बाकी बची हैं तुम्हारी। यह दो रोटियों का आटा ले लो। अब इसके बाद मजदूरी मुफ्त में करनी पड़ेगी। हरिश्चंद्र तारामती के पास जाते हैं। तारामती, अब दो रोटियां सिर्फ बची है। इस सारे संकट को तुम्हारे ऊपर लानेवाला अपराधी मैं हूँ। मुझसे विवाह करने का पाप तुमने किया है। तुम्हें यह पाप भुगतना पड़ेगा। लेकिन यह छोटा-सा रोहिताश्व, इसका क्या होगा? अब इसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगेंगी, भूख के कारण इसका चेहरा सूखने लगेगा तो मुझसे देखा नहीं जायगा। यह हरिश्चंद्र भी डगमगा जायगा। अपना संकट सह सकता हूँ, तुम्हारा संकट सह सकता हूँ। लेकिन इस बालक का संकट नहीं सह सकता हूँ - आज इसको एक रोटी देंगे, कल आधी देंगे, परसों आधी देंगे। फिर क्या रह जायगा! अब एक रोटी रोहिताश्व के हाथ में है। वह ध्यान से सुन रहा है और कहता है, पिताजी, यह मेरा पेट आपके सत्याचरण में अंतराल हो, तो लीजिये, यह पेट फेंक दिया। और यह कहकर वह रोटी फेंक देता है।

लोकनायक जयप्रकाशजी का आवाहन

लोकनायक जयप्रकाशजी ने ऐसे तरुणों का आहावन किया है। ऐसे तरुण चाहिए जो जीविका का उत्सर्ग कर दें। ऐसे तरुण जो पेट फेंक देंगे और कहेंगे कि हमारा पेट इस क्रांति में रुकावट नहीं डालेगा।

जयप्रकाशजी ने इसे संपूर्ण क्रांति कहा है। संपूर्ण क्रांति को मैं सर्वांगीण क्रांति कहता हूँ। वर्ल्डवाईड रेवोल्यूशन फ्रॉम टाप टु बाटम इन आल रेल्मस् आफ ह्यूमन कांशन्स। संपूर्ण क्रांति वह क्रांति है जिसमें प्रतिक्रांति की संभावना क्षीण हो जाती है। टोटल रेवोल्यूशन—सर्वांगीण क्रांति।

कंप्लीट रेवोल्यूशन—संपूर्ण क्रांति

ये दोनों क्रांति के आयाम हैं।

मित्रो, परिस्थिति का अध्ययन करने पर उसको जैसा मैं समझा हूँ आप लोगों के चरणों में समर्पित कर दिया है। इससे आगे यह विचार आप लोगों के दिमाग में बढ़ेगा।

आप लोगों की सेवा में क्रांति की कुछ बुनियादी बातें रख रहा हूँ। इसे आप क्रांति का ककहरा समझ लीजिए। जो बहुत प्रौढ हैं, शायद उनको ये चीजें बहुत प्राथमिक मालूम हों। लेकिन मेरा यह अनुभव रहा है, कि वे जो बुद्धिनिष्ठ हैं वे भी, और जो अधिक सोचते नहीं हैं वे भी क्रांति की बुनियादी

बातों को समझते नहीं हैं, समझना चाहते भी नहीं है। इसलिए जो कई तरह के भ्रम फैले हुए हैं उनका निराकरण करने के लिए मैंने ये बातें आप लोगों की सेवा में रखी हैं और कल मैंने आप लोगों से कहा है, कि लोकतंत्र के संदर्भ में और लोकतांत्रिक उपायों से, लोकतंत्र को हमें लोकसत्ता में परिणत करना है। लोकतंत्र का अधिष्ठाता नागरिक होगा, सैनिक नहीं, साहुकार नहीं और सरकार तो सुतरां नहीं।

दो

असंभव को संभव बनाना होगा
क्रांति व्यापक कैसे हो ?
सत्याग्रह का स्थान
संकट को अवसर बनाया
निःशस्त्रीकरण के साथ हृदय परिवर्तन
हृदय-परिवर्तन—क्रांति का नया आयाम
आर्थिक लोकतंत्र—संयोजन
संयोजन और शिक्षण
व्यक्तित्व के आयाम
इंद्रियों का और श्रमशक्ति का विकास
कला का विकास
गुण विकास
जीवन में पशु का स्थान
यंत्र का प्रवेश
प्रकृति भी जीवन की विभूति
श्रम और विश्राम
फेस-टु-फेस सोसायटी
मूल्य और कीमत
मनुष्य का जीवन-सहजीवन
पड़ौसी कौन
नकल नहीं बनो

लोक-क्रांति के आयाम

असंभव को संभव बनाना होगा

लोक-क्रांति के लिए सरकार अनुकूल परिस्थिति पैदा कर सकती है। ऐसी परिस्थिति जनता सरकार के कारण पैदा हुई है। लेकिन दुनिया की कोई सरकार लोक-क्रांति नहीं कर सकती। लोकक्राँति की विभूति नागरिक है और वही इस क्रांति का अधिष्ठाता और अनुष्ठाता होना चाहिए। उसी के पराक्रम से यह क्रांति होनी चाहिए हमारे सामने यह साफ होना चाहिए, कि हम कहां पहुंचना चाहते हैं। किस दिशा में कदम बढ़ाना चाहते हैं। क्रांति का मकसद, उसका ध्येय हमारी पकड़ में नहीं होता, पहुँच में होता है। हमारी पकड़ में जो है उसको हम 'पॉसिवल' 'फीजिबल' कहते हैं। लेकिन सचाई तो यह है, कि जो पकड़ में है वह तो संभव हो गया है। क्रांति राजनीति की तरह 'आर्ट ऑफ पॉसिबल' नहीं है, बल्कि 'आर्ट ऑफ मेकिंग इंपॉसिबल पॉसिबल' है। जो हमको आज असंभव जान पड़ता है उसको संभव बनाना, व्यवहार्य बनाना क्रांति की कला है। और मैंने आपसे यह कहा, कि इसका कर्ता पुरुष साधारण मनुष्य होना चाहिए। आज तक इतिहास का जो विषय रहा उसको हम इतिहास का कर्ता बनाना चाहते हैं। उसको यह अहसास कराना चाहते हैं, यह प्रत्यय दिलाना चाहते हैं, कि वह अब इतिहास बनायेगा। ईश्वर का नया अवतार अब साधारण मनुष्य के रूप में होगा। जिसके हाथ में आयुध नहीं है, औजार नहीं है ऐसे साधारण मनुष्य का पराक्रम शांतिमय उपायों से ही प्रकट हो सकता है।

क्रांति व्यापक कैसे हो

हिंसक उपायों से साधारण मनुष्य का, नागरिक का पराक्रम प्रकट नहीं हो सकता है, क्यों कि सब सिपाही थोड़े ही हो सकते हैं। सारे के सारे नागरिक सिपाही बन जाए तो सिपाहियत की जरुरत ही नहीं रहेगी। राज्यसत्ता के विरुद्ध जो क्रांति करना चाहेगा, उसके पास उस मात्रा में शस्त्रबल नहीं होगा। क्यों कि हमने राज्य की सब प्रकार से शस्त्रबल संपन्न किया है। हमारी सरकारों के पास आधुनिकतम शस्त्र हों, इसके लिए हमने पैसा दिया है और वोट भी दिया है। उसी सरकार के विरोध में सशस्त्र प्रतिकार से क्रांति नहीं हो सकती। अधिक से अधिक अराजकता हो सकती है, क्रांति नहीं हो सकती। साधारण नागरिक-पराक्रम हिंसक उपायों में प्रकट क्यों नहीं हो सकता इसका एक और भी कारण है। बुलेट में और बैलेट में अंतर है। बुलेट से आतंक पैदा होता है, भय पैदा होता है। और फीयर इज़ ए डार्क इन विच ऑल नैगेटिव्स आर डैवलप्ड भय की पकड़ में से किसी सद्‌गुण का विकास नहीं होता, सारे दुर्गुण ही उसमें से विकसित होते है। इसलिए हमने इमर्जेन्सी का विरोध किया। अब इन कम्युनिस्टों और नक्सलाइटों का क्या कहना है! बंगाल के एक नक्सलाइट नेता ने हमारे एक मित्र से कहा, हम क्रांतिकारी हैं, खूनी नहीं हैं; फिर हिंसा किसलिए करते हैं? हिंसा एक पाप है जो अपरिहार्य है, आवश्यक है—नैसेसरी इविल; हममें क्रांति की तड़प है, बहुजन की दुःस्थिति हमसे देखी नहीं जाती, समाजपरिवर्तन के बारे में अब धीरज नहीं रखा जाता, इसलिए हिंसा करना पड़ता है। नैसेसरी इविल में, जोर अपरिहार्यता पर ही नहीं, पाप पर भी है। यह दवा कड़वी है लेकिन अपरिहार्यता है। अब मान लीजिए, बीमार के लिए शराब दवा के रूप में बतायी गयी है। अपरिहार्य है। फिर क्या होता है? शराब की लत लग जाती है, यानी उसमें जो दोष है, जो इविल है उसकी ओर ध्यान रहता नहीं। केवल अपरिहार्यता का ही ध्यान रहता है। यही आज तक हिंसा के बारे में हुआ है। इविल पर जोर नहीं, नेसेसरी पर है। तेरी जान लिए बिना चारा नहीं है और मन में तेरी जान लेने की भी इच्छा होती है। यहाँ हिंसा अच्छी लगने लगती है। इस पाप की अपरिहार्यता कैसे मिटायी जाय यह क्रांति की खोज है। इसके लिए क्रांति की प्रतिक्रिया में क्रांति करनी होगी।

क्रांतिकारी आदर्शवादी होता है। वर्तमान समाज से वह कई कदम आगे होता है। नहीं तो वह क्रांतिकारी नहीं हो सकता। समस्त क्रांतिकारियों को आशा क्या थी? हिंसा कम से कम करनी पड़ेगी। क्यों कि बहुजन हमारे पीछे रहेंगे। बहुसंख्यक लोगों की क्रांति की आवश्यकता है। कम से कम अस्सी

प्रतिशत लोग दुखी हैं, दीन है, गरीब हैं, वे हमारे साथ रहेंगे। इतना विशाल समूह जब हमारे साथ है तो कितनी हिंसा करनी होगी ? नाम मात्र की हिंसा से काम चल जायेगा और ऐसा हुआ भी। बड़ा मजेदार संजोग है। रूस में बोलशेविक क्रांति हुई। उस क्रांति में कितने लोग मरे, कल्पना है आपको ? प्रत्यक्ष क्रांति में केवल दस व्यक्तियों को जान खोनी पड़ी। अगर प्रत्यक्ष क्रांति में इतनी कम हिंसा हुई तो क्रांति के बाद उसकी पूर्णता के लिए स्तालीन को इतने अधिक परिमाण में हिंसा क्यों करनी पड़ी ? इसका एक कारण है। बहुसंख्य लोगों को क्रांति की आवश्यकता थी। लेकिन उनमें उसकी आकांक्षा नहीं थी। यह आकांक्षा आज नागरिकों में जगानी है। क्रांति के संदर्भ में जहाँ जहाँ हिंसा हो, किसी भी स्तर पर हो, सरकारी या गैर सरकारी हिंसा हो, उस हिंसा का हमें धिक्कार और विरोध करना चाहिए। हिंसा के संदर्भ में कोई लोक-क्रांति संभव नहीं है।

सत्याग्रह का स्थान

क्रांति के शांतिमय उपाय दो तरह के हैं। संवैधानिक और अतिसंवैधानिक। संवैधानिक तरीका है मत का। कानून के लिए अधिष्ठान की आवश्यकता होती है। जनता, जिसके हाथ में राज्यसत्ता नहीं है, सैनिकसत्ता नहीं है और आर्थिक सत्ता भी नहीं है, ऐसी जनता-चाहे वह बहुसंख्य हो या चाहे अल्पसंख्य हो-उसकी सम्मति कानून की अधिष्ठात्री शक्ति बनेगी। यह सम्मति जितनी वास्तविक होगी, लोकतंत्र उतना ही विकासित होता जायेगा परंतु कुछ प्रसंग ऐसे होते है जहाँ वोट के प्रयोग के लिए अवकाश नहीं होता और बुद्धि-शक्ति कुंठित हो जाती है। ऐसे प्रसंगों में क्या जनता के पास कोई विकल्प हो सकता है ? गांधी ने एक अपूर्व पर्याय सुझाया—'सत्याग्रह' प्रतिकार की ऐसी पद्धति,जिसमें शस्त्र-निरपेक्ष वीरता के लिए अवसर हो। शस्त्रनिरपेक्ष वीरता में अल्पसंख्यकों के लिए भी आशा है और सफलता की संभावना भी है। महाराष्ट्र में एक बहुत बड़े समाजवादी विचारक हो गए। आचार्य जावडेकर। उनकी एक बहुत उपयोगी पुस्तक है, 'आधुनिक भारत'। जावडेकरजी ने एक नया शब्द बनाया, 'सत्याग्रह समाजवाद'। इसमें गांधी और मार्क्स का समन्वय करने की चेष्टा उन्होंने की है। लोक समाज यदि सत्याग्रह के साधन को अपनाता है तो उसमें से सत्याग्रही समाजवाद की स्थापना होगी।

संकट को अवसर बनाया

हर क्रांतिकारी की यह विशेषता होती है, कि वह प्रतिकूलता में से अनुकूलता

उपस्थित करता है। संकट को अवसर बना देता है। हमारा देश भूखों का देश है। भूखों के इस देश में आंदोलन का आरंभ हुआ उपवास से। देश बेकारों का है, आंदोलन का आरंभ हुआ हड़ताल से। देश निहत्थों का है और आंदोलन का आरंभ हुआ शस्त्र-निषेध से। जनता को अपने पीछे ले जाने की जो शक्ति गांधी में आयी, उसका रहस्य यहाँ है। भूखे में उपवास की शक्ति जागृत हो, बेकार अपनी मर्जी से काम बंद कर सके, निहत्था हथियार छोड़ने के लिए तैयार हो जाय। पैसिव रेज़िस्टन्स में और गांधी की प्रक्रिया में यह एक बड़ा फर्क था। पैसिव रेज़िस्टन्स विवशता का ग्रस्त्र है, उसमें शस्त्र का निषेध नहीं है। जहाँ विवशता है वहाँ वीरता नहीं है। लाचारी से जो प्रतिकार होता है वह सफल हो सकता है लेकिन उसमें से भावरूप शक्ति का विकास नहीं हो सकता। गांधी इस खोज में था कि प्रतिकार हो, शस्त्र-निरपेक्ष प्रतिकार हो, लेकिन वह भावरूप, वीरता युक्त प्रतिकार हो। सत्याग्रह में 'शस्त्र-निरपेक्ष वीरता' होगी। उसमें धर्मयुद्ध की असीम वीरता तो है, लेकिन धर्मयुद्ध की विहित हिंसा नहीं। धर्म युद्ध वह युद्ध है जिसमें विकार नहीं है, जिसमें विजय की आकांक्षा नहीं है और अपना स्वार्थ भी नहीं है। सिपाही की इज्जत इसमें है, कि वह अपनी जान देने के लिए तैयार रहता है। जहाँ अपनी जान का खतरा नहीं है, वहाँ वीरता नहीं है।

निःशस्त्रीकरण के साथ हृदय-परिवर्तन

शस्त्र से वीरता का संबंध क्या है। शस्त्र में उसके सहचारी भाव होते हैं। चकला-बेलन है। आपके हाथ में किसीने दिया तो आप चिढ़ जायेंगे। उसके साथ कुछ सहचारी भाव हैं। कान पर कलम है, आप कहते हैं, मुंशी है। इस तरह से शस्त्र के साथ कुछ सहचारी भाव हैं। किसी लड़के के हाथ में बंदूक दे दीजिए, तो वह आप पर ही निशाना लगाएगा। वीरता असल में हथियार में नहीं होती, हथियार जो धारण करता है, उसके हाथ में और उस हाथ के पीछे जो दिल होता है, उसमें होती है। शस्त्रधारी की वीरता भी शस्त्र निरपेक्ष होती है। इस लिए शस्त्र के सहचारी भाव मनुष्य के मन में से निकल जाने चाहिए। इस वस्तु का सदुपयोग ही दुरुपयोग है। इसलिए दुनियाभर के लोग निःशस्त्रीकरण का नारा लगाते है। नि.शस्त्रीकरण समाज-परिवर्तन के लिए आवश्यक है लेकिन इतने से मनुष्य का हृदय-परिवर्तन पूरी तरह से नहीं होता। शस्त्र नहीं होंगे तो चकला-बेलन ही शस्त्र बन जाएगा। लड़कों में लड़ाई होती है तो लट्टू ही शस्त्र बन जाते हैं। मनुष्य का दिल और दिमाग सही न हो तो धर्म, साहित्य संस्कृति जाति, भाषा, देवता को ही वह शस्त्र बनायेगा। गांधी ने एक दफा गांधी-सेवा-संघ की परिषद् में बहुत वेदना के साथ कहा था, आप लोग मेरी पुस्तकें, हरि-

जन, यंग इंडिया और नवजीवन की फाइलें मेरे साथ जला दें। मेरे मरने के बाद अगर ये रह जाएंगी तो लोग एक दूसरे पर इन्हीं को फेंककर मारेंगे। ये ही आपके हथियार बन जाएंगे। आप में से हर एक कहेगा कि मैं जो कहता हूं यही गांधी का सही विचार है, यही गांधी चाहता था।' इसलिए निःशस्त्रीकरण के साथ-साथ हृदय-परिवर्तन होने की आवश्यकता है। आवश्यकता है कि प्रतिकार की प्रक्रिया में से भी लोगों का शिक्षण हो।

हृदय-परिवर्तन—क्रांति का नया आयाम

लोक-क्रांति या संपूर्ण क्रांति के दो पक्ष हैं और इन दोनों पक्षों के चार-चार आयाम हैं।

(१) संदर्भ परिवर्तन—चेंज आफ कांटेक्स्ट
(२) मूल्य परिवर्तन—चेज आफ वैल्यूज
(३) संबंध परिवर्तन—चेंज आफ रिलेशनशिप और गांधी ने इसमें आयाम जोड़ दिया—
(४) हृदय परिवर्तन—चेंज आफ हार्ट; यह गाँधी का अपना योगदान है।

दूसरे पक्षों में भी चार आयाम हैं।

(१) आर्थिक क्षेत्र में क्रांति
(२) राजनैतिक क्षेत्र में क्रांति
(३) सामाजिक क्षेत्र में क्रांति
(४) सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांति

इन सब को क्रमशः नहीं लेकिन यथा संभव सबको मिलाकर आपके सामने कुछ विचार रखूंगा।

आर्थिक लोकतंत्र--संयोजन

हम यह देखें कि आर्थिक क्षेत्र की क्रांति में कौन-सी बुनियादी बातें हैं! लोकतंत्र केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही जब तक रहता है तब तक वह निर्जीव है। आर्थिक क्षेत्र में अगर लोकतंत्र नहीं होगा, तो राजनैतिक क्षेत्र का लोकतंत्र भी सफल नहीं हो सकता। इसका प्रमाण यह है, कि लोकतांत्रिक संदर्भ में ही इस देश में इमरजेंसी आयी और उस वक्त की पार्लियामेंट ने उसका समर्थन भी कर दिया। निर्जीव लोकतंत्र औपचारिक लोकतंत्र है। वास्तविक लोकतंत्र लाने के लिए आर्थिक लोकतंत्र की भी आवश्यकता है। आर्थिक लोकतंत्र का नाम है संयोजन। संयोजन किसलिए? जीवन में इस धरती पर जितना जीवन है, सारा

जीवन आ जाता है—वनस्पति से लेकर मनुष्य तक। लेकिन हम मानें कि संयोजन मानव-केंद्रित होना चाहिए। मानव केंद्रित संयोजन के लिए पहली निष्ठा है, जीवन-निष्ठा। जीवन की एकता में श्रद्धा होनी चाहिए। एक अंग्रेजी तत्त्वज्ञानी ने इस निष्ठा को बड़े सरल शब्दों में कहा है—एक भी मनुष्य का जीवन अगर क्षीण होता है तो मेरा जीवन क्षीण होता है उसकी प्रतिष्ठा क्षीण होती है तो मेरी प्रतिष्ठा क्षीण होती है। यह जीवन निष्ठा है। संबंध के बिना जीवन नहीं है। संबंध ही जीवन है। जर्मनी के शार्डिन ने किताब लिखी, 'बिल्डिंग द अर्थ'। इस पृथ्वी का संयोजन कैसे हो ? दो बातें बड़ी पते की, बड़े मार्के की कहीं उसने। एक बात तो यह कही, कि मनुष्यों का एक दूसरे के नजदीक आना, एक दूसरे की तरफ बढ़ना यही प्रगति है; और कोई प्रगति नहीं हैं। प्रगति की अन्य सारी परिभाषाएं मिथ्या हैं। दूसरी बात उसने यह कही, कि दोनों एक-दूसरे की तरफ बढ़ते हुए एक दूसरे को ऊपर उठाने चले जाते हैं।

यह कैसे होगा ! संयोजन में कुछ बुनियादी बातें आनी चाहिए। पहली बुनियादी बात यह है कि संपत्ति और स्वामित्व के संदर्भ में मनुष्य का रुख बदलना चाहिए। दूसरी बात है, मनुष्य और मनुष्य के बीच संपत्ति के कारण जो संबंध उपस्थित हुए हैं उनको भी बदलना होगा और तीसरी चीज है, मनुष्यों के दूसरे जीवों के साथ और सृष्टि के साथ संबंधों में परिवर्तन। थोड़े में, हमें तीन बातों का परित्याग करना होगा एक हिंसा, दूसरी—मनुष्य मनुष्य में अलगाव और तीसरा प्रदूषण। और इन तीन चीजों को टालने के लिए संयोजन करना होगा।

मनुष्य और मनुष्य में आपस के आज जो संबंध हैं उनमें परिवर्तन होना चाहिए। कोई मालिक और कोई मजदूर नहीं रहेगा। एक महाजन और दूसरा नौकर यह रिश्तेदारी भी नहीं रहेगी। एक आदमी बिकता है और दूसरा आदमी उसे खरीदता है यह संबंध नहीं रहेगा। इस रिश्ते का हम अंत करना चाहते हैं। इसमें बुनियादी बात यह है कि आज जो पिछड़ा हुआ है, दबा हुआ है, जो खोया हुआ है उसके पराक्रम से ये रिश्ते बदलने चाहिए। आज के संयोजन में स्टेटिसटिक्स ने मनुष्य को सिर्फ़ अंक बना दिया है। एक उदाहरण मैं दिया करता हूं। पितृपक्ष के दिनों में गया में मैं रहता था। भूदान का जमाना था। एक दिन ट्रेन में बैठा पटना जाने के लिए। वहां की म्युनिसिपल कमेटी के सेक्रेटरी साथ में थे। मुझसे कहने लगे, कि इस साल पितृपक्ष में बहुत प्रगति हुई है। पिछले साल साढ़े सात प्रतिशत आदमी कॉलरा में मरे थे। इस साल सिर्फ ढाई प्रतिशत मरे हैं। तो मैं उसकी तारीफ करने लगा। मेरी बगल में एक स्त्री बैठी थी। वह रोने लगी। उसके पास उसका भाई बैठा था।

मैंने उसे पूछा कि यह क्यों रोने लगा ? तो वह झल्लाया। कहने लगा, कि ये सेक्रेटरी क्या बक रहे हैं ! इनकी म्युनिसिपालिटी में ढाई प्रतिशत आदमी मरे होंगे, लेकिन मेरी बहन का पति तो सौ प्रतिशत मर गया है। हर मनुष्य पूरा है, समूचा है। वह फ्रैक्शन नहीं है मानवता का। आज का जो संयोजन हो रहा है वह हमें कहाँ ले जा रहा है ? एक बड़ा घुड़सवार था, सवारी में बड़ा निष्णात। वह एक दिन घोड़े पर से गिर गया। उसका घोड़ा सिखाया हुआ था। उसने सवार को उसकी सीट से पकड़ा और अपनी पीठ पर बिठाकर ले गया उसको दवाखाने में। दूसरे दिन अखबार मैं हेडलाइन्स में खबर आयी कि ऐसा घोड़ा तो नहीं देखा। मानो सरकस में हो। कैसे अपने सवार को दवाखाने पहुंचा आया। तो घुड़सवार को बधाई देने के लिए लोग पहुँचे। तुम्हारा घोड़ा तो कलात्मक मालूम होता है, तुमको तो अस्पताल पहुँचा आया। घुड़सवार कहने लगा, हाँ, घोड़ा तो बहुत होशियार है। लेकिन जानते हो क्या हुआ ? वह मुझे जानवरों के अस्पताल ले गया। यही हाल आज हमारे संयोजन के साथ हो रहा है।

आज मनुष्य कहीं खो गया है और भगवान सो गया है। बरट्रांड रसेल ने एक बार लिखा था कि मेरा ईश्वर पर विश्वास तो है लेकिन इस दुनिया को मैं ईश्वर की बनायी हुई नहीं मानता। इट सीम्स टू मी दैट दी डेविल मेड दिस वर्ल्ड वैन गाड़ वाज नाट लुकिंग। भगवान देख नहीं रहा था तब शैतान ने दुनिया बना डाली। इसलिए इस तरह की दुनिया है यह, जहाँ साधारण मनुष्य का किसी को पता नहीं है। अनलेबल्ड एण्ड अनकमिटेड ऐसा जो साधारण मनुष्य है उसका किसी को पता ही नहीं है। अब इसी सामान्य मनुष्य के पराक्रम से परिवर्तन होना चाहिए। इसका कारण क्या है ? समाज परिवर्तन की आवश्यकता उसी को है जो विपत्ति में है। जो सुख से जी रहा है उसे परिवर्तन की आवश्यता ही क्या है। लेकिन जो संकट में है, जो दुःख में है उसमें समाज परिवर्तन की प्रेरणा नहीं है। यह प्रेरणा और आकांक्षा जागृत करनी चाहिए, यही लोक शिक्षण है। राजनैतिक स्वतंत्रता तो उसे मिल गयी है अंग्रेजी राज के ये कुछ वरदान हमें मिले हैं। इवन दी डार्स्केट हैज ए सिलवर लाइनिंग जो चीजें हमारे देश में पहले कभी नहीं थीं वे मिली हैं। ये कौनसी चीजें हैं ?

हर एक मनुष्य कानून के सामने सामान रूप से प्रतिष्ठित है, उसका रुतबा समान है। चाहे ब्राह्मण चोर हो, चाहे भंगी चोर हो, घन-श्यामदास बिडला चोर हो या स्टेशन का कुली चोर हो—कानून के सामने सारे समान हैं। दूसरी चीज, अमीर हो, गरीब हो; ब्राह्मण हो, भंगी हो; बूढ़ा हो; स्त्री हो, पुरुष हो—सबके एक ही वोट है। और तीसरी चीज है, सबको शिक्षण का

अधिकार है।

इन तीन स्वतंत्रताओं के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रेरणा उसमें आनी चाहिए और प्रेरणा के साथ पराक्रम, पुरुषार्थ करने की स्फूर्ति आनी चाहिए। अब यह प्रेरणा कौन-सी होगी।

संयोजन और शिक्षण

पहली चीज है, उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया में से मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। यहां पर संयोजन और शिक्षण को मैं मिला रहा हूँ, आज संयोजन एक तरफ जा रहा है, शिक्षण दूसरी तरफ जा रहा है। इसमें से न संयोजन सफल होगा न शिक्षण सफल होगा।

एक खानखामा की कहानी मुझे याद आती है। उसके मालिक ने कहा, आज बाजार में से एक सारस पक्षी लाया हूँ। इसको आज पकाना। अब उस खानसामे की एक प्रेयसी थी। वह उसी दिन वहाँ पहुँची। कहने लगी, तू मुझसे प्यार करता है ? हाँ, करता हूँ। तो फिर मुझे इसका सबूत दे। इस सारस पक्षी की एक टाँग मुझे दे दे। किताब में लिखा है कि सारस पक्षी की टांग बड़ी स्वादिष्ट होती है। अब इस खानासामा की नानी मर गयी, कि मालिक क्या कहेगा ! लेकिन उसको अब अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूरी करनी थी। वह तो साधारण खानसामा था, कोई मिनिस्टर नहीं था जो बदल जाता। उसने अपनी बात पूरी की। एक टाँग काटकर प्रेयसी को दे दी। फिर मालिक बैठा टेबल पर। सारस पक्षी को देखकर पूछा, इसकी दूसरी टाँग कहां हैं ! खानसामा बड़ा हाजिर जवाब था। उसने कहा, हुजूर, इसकी एक ही टांग होती है। मालिक चुप रह गया। दूसरे दिन सवेरे घूमने ले गया खानसामा को तालाब पर। वहाँ बहुत से सारस पक्षी खड़े थे। इनकी आदत होती है, तपस्वियों की तरह एक टांग पर ये खड़े रहते हैं। तो वे सारे पक्षी एक ही टांग पर वहाँ खड़े थे। खानसामा ने कहा, देखिये हुजूर इनके एक ही टांग है। मैं कह रहा था न ? मालिक ने ताली बजायी तो दूसरी टांग लेकर सारे के सारे सारस उड़ गये। मालिक ने कहा, देखो दो टांगें हैं। खानसामा ने जवाब दिया, हुजूर इसमें एक ही गलती हुई है, आपने वहाँ टेबल पर ताली बजायी होती तो वह सारस भी दूसरी टांग दिखा देता। तो अब हम इस बेजान संयोजन और शिक्षण के सामने तालियाँ पीट रहे हैं।

संयोजन और शिक्षण का अनुबंध होना चाहिए। जब तक यह नहीं होगा तब तक न तो बेकारी की समस्या हल होगी और न गरीबी की। बेचारे विद्यार्थी परेशान हैं। वे जान नहीं पाते, समझ नहीं पाते, कि क्या करें ! शिक्षण

तो मिला है, लेकिन इस शिक्षण के बाद, जिसके लिए शिक्षण मिला है उसके लिए अवसर नहीं है। मैं इन तरुणों से कहता हूँ कि आप अपने मन से पूछिए, कि हम चाहते क्या हैं ? आज की वर्तमान समाज रचना में सम्मान और प्रतिष्ठा चाहते हो ? या इस समाज रचना का आमूल परिवर्तन करना चाहते हो ?— स्टेटस एण्ड ऑनर इन दी एग्ज़िस्टिंग सोशल आर्डर आर यू वाण्ट टू मेंड दी आर्डर इटसैल्फ ? आज जिसको हम एस्टॅब्लिशमेंट कहते हैं उसमें हमें प्रतिष्ठा और सुख नहीं चाहिए यह संकल्प उनको करना चाहिए। तरुण कहते हैं हम को काम (जॉब) दो। कौन दे ? सरकार ? सारे के सारे राष्ट्र को आप सरकारी नौकरों का बना देना चाहते हैं ? तो जैसा मैंने कहा था, सरकार भगवान बन जायगी। फिर तो नागरिक के लिए कोई जीवन शेष नहीं रह जायगा। ऑटोनॉमस लाईफ, स्वतंत्र जीवन उसके लिए नहीं रह जायगा।

व्यक्ति के आयाम

मार्क्स ने प्रतिज्ञा की थी, नॉट गर्वनमेंट आफ थिंग्स बट एडमिनिस्ट्रेशन आफ थिंग्स। वस्तुओं का संयोजन होगा, मनुष्यों का प्रशासन नहीं। इसलिए मैंने आपसे कहा कि मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उत्पादन की प्रक्रिया में से होना चाहिए। इस संदर्भ में मनुष्य के व्यक्तित्व के आयामों का विचार करेंगे।

इंद्रियां और श्रम शक्ति का विकास

एक आयाम है मनुष्य का श्रम। इस श्रम से मेरा मतलब है उसकी इंद्रियों की और अवयवों की शक्ति। इन शक्तियों का विकास होना चाहिए। इंद्रियों को 'करण' भी कहते हैं। करण यानी इंद्रियां; और उपकरण यानी वह जो करण के नजदीक का है, हाथ करण है तो हथौड़ा उपकरण है। हथौड़ा ऐसा हो जो हाथ की शक्ति बढ़ा सके, हाथ के अनुरूप हो। मुक्के की शक्ति बढ़ाने के लिए हथौड़ा है; वह ऐसा न हो कि मेरे मुक्के की शक्ति छीन ले। कोई चश्मा ऐसा न हो जो मेरी आंखों को छीन ले। कोई सवारी ऐसी न हो जो मेरे पैरों की शक्ति छीन ले। करण उपकरण में साधर्म्य होना चाहिए, यह सांस्कृतिक क्षेत्र में भी लोगों ने मान लिया है। वस्तु का आदर अपने में एक रसिकता है। यही आदर निर्माण के साधन में होना चाहिए। रविशंकर का सितार है। एक दफे वह अपना सितार नहीं ले गया। मेयर ने कहा, कि कहीं से भी आपके लिए सितार मँगा देंगे। रविशंकर ने कहा, दुनिया से कहीं से भी ला देंगे तो भी उसका उपयोग नहीं होगा। मेरे उपकरण के साथ मेरा जीवित संबंध हो गया है। वह सितार मेरे शरीर का अवयव हो गया है। यह आत्मीयता परिग्रह की भावना

नहीं है। यह रसिकता है। तो अवयवों की शक्ति विकसित होनी चाहिए। यह पहली बात हुई।

कला का विकास

दूसरा आयाम है, कला का विकास। मनुष्य की कला भी उसके इंद्रियों पर और उसके अवयवों पर निर्भर है। कला वायकेरियस नहीं है। कला मनुष्य में अपनी होनी चाहिए। आज जिसे आप रिक्रियेशन कहते हैं वह वायकेरियस-दूसरों की मार्फत है।

एक प्रसंग में याद किया करता हूँ। राजाजी बड़े रसिक थे। मैं उनको बहुत मानता हूँ। रुक्मिणी अरुंडेल के यहाँ एक दफा एक सांस्कृतिक कार्यक्रम नृत्य का हुआ। राजाजी निमंत्रित थे। उनसे पूछा, कैसा लगा आपको? कहा, अच्छा लगा। लेकिन वह बाथरूम कॉस्ट्यूम में क्यों नाची? उसके कपड़े बहुत कम थे शायद। पूरे कपड़े क्यों नहीं पहने उसने? पूछने वाला बड़ा तेज था। उसने कहा, हमारे शिव-पार्वती भी तो ऐसे ही नाचते थे। राजाजी उससे कुछ कम नहीं थे। कहने लगे, शिव-पार्वती स्वयं नाचते थे, दूसरों को नाचते देखने नहीं जाते थे। यह प्रत्यक्ष कलाभिरुचि है। संयोजन में मनुष्य का अपना सक्रिय हिस्सा होना चाहिए। नहीं तो वह वायकेरियस हो जाता है। जैसे सारे धार्मिक विधि ब्राह्मण द्वारा, पुरोहित द्वारा होते हैं, वैसे ही सेकंडहैंड रिक्रियेशन होता है। इसमें से संयोजन नहीं आता है। इसलिए मैंने आपसे कहा, कि उसकी कला का भी विकास होना चाहिए।

गुण विकास

तीसरी चीज है, उनके गुणों का विकास होना चाहिए। इसको हमने कैरक्टर कहा है। कैरेक्टर हर मनुष्य की विशेषता है। एवरी मैन हैज एन एक्सैलेंस ऑर द अदर। कैरेक्टर का लक्षण क्या है? जो मनुष्य को मनुष्य के नजदीक लाता है उसका नाम चारित्र है। यही संस्कृति है। क्रांति की प्रक्रिया में और क्रांति के बाद मनुष्य को मनुष्य के नजदीक आना चाहिए।

इन सब चीजों को मिलाकर मनुष्य का व्यक्तित्व बनता है। इसे मानवीय विभूति कहते हैं। तो संयोजन में पहली चीज होगी कि मनुष्य के व्यक्तित्व का, उसकी विभूति का विकास होगा।

दो विचार प्रवाह हैं। एक विचार प्रवाह है लुई मम्फोर्ड का, एरिक फ्रॉम का। और भी बहुत से इस संप्रदाय के लोग हैं। एरिक फ्रॉम की एक पुस्तक है, 'मैन फॉर हिमसेल्फ़'—मानव अपने लिए। ये कहते हैं, जब उपकरणों

का शोध भी नहीं हुआ था, उस वक्त भी मनुष्य में एक दूसरे के साथ रहने की सिफ्त थी। यानी संस्कृति का आरंभ उपकरण के आरंभ से पहले हो चुका था।

दूसरा विचार है, मेजर मैकलुहान का। इसकी प्रसिद्ध पुस्तक है, 'अंडरस्टैंडिंग मीडिया, द एक्स्टेन्शन्स ऑफ मैन'। आज के मनुष्यों के एक दूसरे के साथ व्यवहार के जो साधन हैं, इनसे मनुष्य के शरीर का विस्तार हुआ है। दांत के विस्तार का या नाखून के विस्तार का काम चालू है। पहले मनुष्य ने अपनी सीमाओं को पहचाना। शेर के नाखून दांत हैं। हाथी का डील डौल है, हिरण के तेज कदम हैं। हमारे कुछ नहीं हैं। यह सब मनुष्य पहचानता है। अपनी सीमाओं का उसको अनुभव हुआ। इसके बाद वह संपन्न हुआ। उपकरणों से संपन्न हुआ, समृद्ध हुआ। समग्रता की ओर गया, पुष्ट हुआ। उपकरणवान मनुष्य पहले के मनुष्य की अपेक्षा कुछ पुष्ट हुआ। इसके बाद उसका विस्तार हुआ, इजाफा हुआ। उसकी इंद्रियों का परिवर्धन हुआ। इसके बाद हुआ 'मैन इमिटेटेडा' मनुष्य की नकल होने लगी। कंप्यूटर आया। यंत्र मनुष्य की नकल करने लगा, उपकरणों का विकास होता चला गया। परिणाम यह हुआ कि 'मैन ट्रान्सप्लान्टेड' हो गया वह स्थान-भ्रष्ट हो गया। उसका स्थानांतर हो गया। गीत गाना है—रेडियो है। गणित करना है—कंप्यूटर है। पाठ पढ़ाना है शिक्षक को—टेप रिकार्डर है। अब मनुष्य के पास क्या रह गया? उसके पास काम नहीं है। केवल लोहार की धौंकनी है वह। जीवन में फंक्शन नहीं रह गया। व्यवसाय नहीं रहा। इसलिए अंत में 'मैन मॉडिफाइड'—परिवर्तित मानव। यह जो उपकरण और मनुष्य का संबंध है, आज की सांस्कृतिक क्रांति का आर्थिक क्षेत्र में अंतिम विचार है। लेकिन क्या यहीं पर संस्कृति आकर ठिठक जायगी? सांस्कृतिक विकास से मतलब है, जीव का विकास और जीवन का विकास। मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास, पशु की विभूति का विकास और सृष्टि की, प्रकृति की विभूति का विकास।

जीवन में पशु का स्थान

आज मनुष्य इस मुकाम पर पहुँचा है, कि उत्पादन का संबंध अधिक से अधिक भूमि के साथ होना चाहिए। यह नयी एकोलॉजी है बाइबल में कहा है, तू मिट्टी का बना हुआ है, मिट्टी में मिल जाने वाला है। जिस धरती की मिट्टी का मनुष्य बना हुआ है, उसके साथ उसका ऑरगैनिक संबंध है। ऑरगैनिक से मतलब सेंद्रिय। उत्पादन में मनुष्य की शक्ति की कला और मनुष्य के गुणों का संपूर्ण विनियोग होना चाहिए। मनुष्य के बाद आता है पशु। बहुत से लोग आते हैं विदेश से। ऐसी एक लड़की हमारे देश में चूहे को देखकर भी प्रसन्न होती थी। कहती थी,

पैरिस में उसको चूहा भी देखने को नहीं मिलता है। पशुओं का प्रेम मनुष्य का स्वभाव है। अब तो घड़ियाल, मगर और सांप, केंचुए और छिपकलियां भी कितने लोग पालने लगे हैं! लेकिन प्राणियों के शौक के लिए नहीं, खिलौने के रूप में नहीं, सहयोगी के रूप में पालना चाहिए। जिस दिन मनुष्य ने मनुष्येत्तर प्राणी को अपने जीवन में दाखिल किया और उसका समावेश उत्पादन की प्रक्रिया में किया, उस दिन उसने सांस्कृतिक दिशा में एक कदम आगे रखा। पशु के विषय में हमारे देश की एक मर्यादा है। मर्यादा हमने यह मान ली है कि गाय को हम नहीं मारेंगे। अब यह मर्यादा एक सांस्कृतिक मर्यादा है। अब तक हिंदुओं ने इसको सांप्रदायिक मर्यादा माना है इसलिए यह मर्यादा सार्वजनिक नहीं हो सकी। जिस दिन इसको हम सांप्रदायिक नहीं मानेंगे उसी दिन से समाज-जीवन में गाय की कद्र होगी। सांप्रदायिक मर्यादा न मानने का एक लक्षण है—मनुष्य को गाय से श्रेष्ठ मानेंगे। आज हम मनुष्य को गाय से गौण मानते हैं। मगर व्यवहार में गाय को सुअर से भी बदतर मानते हैं। गाय को अगर अवध्य माना है, तो वह समस्त जीवन की प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में। तो कह यह रहा था, कि पशु-शक्ति का, और पशु की कला का भी उत्पादन में विनियोग होना चाहिए। पशु में भी कला होती है। उसमें एक मैत्री होती है, सख्य की भावना होती है। घोड़ा, कुत्ता, बैल, सारे पशु मैत्री करना जानते हैं। पशु का मनुष्य के जीवन में उसके साथी के नाते दाखिल होना संस्कृति का बहुत बड़ा कदम है।

यंत्र का प्रवेश

आज हमारे जीवन में से एक-एक पशु जा रहा है और पशु की जगह उपकरण आ रहा है। यंत्र आ रहा है। यानी जीवन का विकास कुंठित हो रहा है। एक ने मुझे कहा, यह जो कंप्यूटर है, इट इज़ इनफैलिएबल। इट नैवर कमिट्स मिस्टेक्स; इट इज़ बैटर इफ़ इट सबस्टीच्यूट्स ह्यूमन ब्रेन्स। लेकिन कंप्यूटर की एक मर्यादा है। यह कभी पागल नहीं हो सकता है और यह जीनियस भी नहीं बन सकता। यह यंत्र की मर्यादा है। मनुष्य का यह गौरव है कि वह पागल भी हो सकता है और जीनियस भी बन सकता है। प्रतिभाशाली बन सकता है।

यंत्र किसलिए आया था? मनुष्य को स्वतंत्र करने के लिए, मनुष्य को श्रम से बचाने के लिए। अब क्या हुआ है? मनुष्य यंत्र को नहीं जोत रहा है, यंत्र मनुष्य को जोत रहा है। वह सारी यंत्र-व्यवस्था का एक अंग बन गया है। यह मनुष्य का जो संस्करण है, 'टेक्नौलॉजिकल मैन' कहलाता है—यांत्रिक

मनुष्य । पश्चिम के जितने संपन्न राष्ट्र हैं, उनकी यह समस्या है । वहाँ फुरसत की एक नयी समस्या पैदा हो गयी है । यंत्र युग में नयेऔजारों का आविष्कार हुआ । नये औजारों का नतीजा क्या होगा ? उत्पादन अधिक होगा और मनुष्य कम लगेंगे । मनुष्य कम लगेंगे तो मनुष्य बेकार होते चले जायेंगे । जहाँ मनुष्य शक्ति बेकार न पड़ी हो वहाँ यंत्रीकरण से फुरसत बढ़ सकती है । लेकिन हमारे देश में मनुष्य शक्ति बेकार पड़ी है । जो मनुष्य बेकार होते जायेंगे, वे गरीब होते चले जायेंगे । वे चीजें खरीद नहीं सकेंगे । उत्पादन बढ़ेगा, विक्रय नहीं होगा । यह अंतर्विरोध है । इसलिए यंत्र युग के साथ नक्शा बदल गया । फिर किताबें लिखी गयीं, 'द फेल्युअर ऑफ टेक्नौलॉजी' । दूसरी किताब लुई ममफर्ड की, 'द मिथ आफ द मशीन' । इनका कहना है कि अब आर्थिक ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता है ।

इस देश में हम संपन्नता चाहते हैं, प्रचुरता चाहते हैं, लेकिन मानवनिष्ठ संपन्नता, मानवनिष्ठ प्रचुरता, जीवननिष्ठ समृद्धि । इसलिए उत्पादन की प्रक्रिया में मनुष्य का फंक्शन किसी तरह से नष्ट नहीं होना चाहिए । उसी तरह उत्पादन की प्रक्रिया में पशु का समावेश होना चाहिए । उस पशु में तीन गुणों की आवश्यकता है । एक तो ऐसा पशु हो जो मनुष्य के साथ हिल-मिल सकता हो । यानी संयोजन में जिसका उपयोग हो सकता हो । जो पशु उपयोगी नहीं होगा उसे विधाता भी नहीं बचा सकेगा । दूसरी चीज, ऐसा पशु हो जो दूसरे पशुओं की हत्या नहीं करता । वह हिंस्र न हो । तीसरी, वह ऐसा पशु हो जिसके लिए मनुष्य को प्रेम पैदा हो सकता है । ऐसा पशु हमारे देश में गाय को चुना गया है । मनुष्य के और पशु के कला-गुणों का विकास उत्पादन की प्रक्रिया में से, और वितरण की प्रक्रिया में से होना चाहिए ।

प्रकृति भी जीवन की विभूति

मनुष्य का प्रकृति के साथ का संबंध कैसे हो ? उन्नीसवीं शताब्दी का नाम रखा गया है, 'दी सेंचुरी ऑफ कन्क्वैस्ट एण्ड दी सेंचुरी आफ होप—जिसमें मनुष्य ने प्रकृति को परास्त किया और प्रकृति पर विजय पायी । क्या प्रकृति हमारी दुश्मन है ? प्रकृति जीवन की विभूति है । जीवन जिन साधनों से संपन्न होता है उनका नाम विभूति है । पांडिचेरी में मैं गया था । वहाँ हर एक फर्नीचर पर लिखा था—एवरी फर्नीचर हैज इट्स पर्सनैलिटी । गार्ड इट्स ऑनर । एक एक चीज का अपना एक व्यक्तित्व होता है । उसका ध्यान रखो । हमारे यहाँ इसे विभूतियोग कहा है । यह ॲनिमीज्म नहीं है । मनुष्य का एक भावनात्मक विश्व होता है जिसमें कविता होती है, कला होती है, संगीत होता है ।

उसके लिए जमीन सिर्फ जमीन नहीं है, मातृभूमि है। गंगा सिर्फ पानी नहीं है, तीर्थ है। 'स्वर्गारोहण वैजयन्ती' है। हिमालय सिर्फ पहाड़ नहीं है, देवतात्मा है। तो इस सृष्टि की विभूति को हम लूटेंगे नहीं, उसका शोषण नहीं करेंगे। जीवन संपन्न करने के लिए उससे सहयोग करेंगे। शाकुंतल में देवदारु के लिए कहा गया है, "पुत्री कृतोऽसौ वृषभध्वजेन," इसको भगवान शंकर ने अपना पुत्र माना था। और जब शकुंतला पति के घर जाने लगी तो कण्व वर्णन करता है, कि कौनसी शकुंतला ? इतनी अलंकारों की प्रेमी होने के बावजूद जो तुम्हारा एक पत्ता भी नहीं तोड़ती क्यों कि तुम्हारे लिए मनमें स्नेह है।

विक्टर नाम के एक आदमी ने किताब लिखी। 'टेक्नॉलॉजिकल मैन, दि मिथ एंड द रिअॅलिटी'। यांत्रिक मानव, काल्पनिक और वास्तविक। वह कहता है ' ए न्यू नेचरॅलिज्म,' एक नयी प्रकृतिनिष्ठा की आवश्यकता है। इसका दूसरा चरण है, 'न्यू होलिज्म'। एक नहीं समग्रता। सृष्टि में जितने द्रव्य हैं, जितनी विभूतियां हैं, इनमें एक ऐसा संतुलन है, कि जिसमें से जीव संपन्न होता है, जीवन संपन्न होता है।' डिसिप्लीन ऑफ पीस' नाम की एक किताब है। अगर शांति चाहिए तो प्रकृति को लेकर एक नये अनुशासन की आवश्यकता होगी। अब तक क्या था जीवन में, फ्रॅगमेंटेशन, कंपार्टमेंटेशन। अर्थात विशेषज्ञों की दुनिया। एक मरीज एक दफा विशेषज्ञ डॉक्टरों के पास जाँच कराते-कराते बड़ा तंग आ गया। उसने कहा, आँख की जाँच करानी हो तो दोनों आँखें एक ही डॉक्टर जाँचेगा या दो डॉक्टर जाँचेंगे ? इस तरह एक एक अंग का विकास हुआ, समग्रता का ह्रास हुआ। विशेषज्ञों की परिषद में पूछा गया कि समूचा मानव कहाँ है ? कहा गया कि वह तो निमंत्रित ही नहीं किया गया। तो जीवन की एक नयी समग्रता एक नयी संपन्नता की आवश्यकता है। मनुष्य की जीविका का जो संयोजन होता है उसका परिणाम जीवन पर होता है। इसलिए जीवन और जीविका, शंभु और अंबिका की तरह अभिन्न हो जाते हैं।

श्रम और विश्राम

संयोजन में श्रम और विश्राम का, काम और आराम का सामंजस्य होना चाहिए। इसी दृष्टि से उत्पादन के औजारों का सुधार हो लेकिन एक शर्त है। हमको विपुलता प्रस्तुत करनी है। आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। उसके लिए सबको मेहनत करनी पड़े तो सबको करनी चाहिए। 'सब' से मतलब प्रधान मंत्री से लेकर भंगी तक। यह आवश्यक, अनिवार्य श्रम यंत्र से भी करा सकते हैं। लेकिन मनुष्य को शारीरिक स्वास्थ्य के लिए परिश्रम की आवश्यकता है।

कभी-कभी मैं यूरोपिअन सोशॅलिस्टों से बहुत आकर्षित हो जाता हूँ। इनकी कल्पनाशक्ति का कोई अंत नहीं था। ये अवैज्ञानिक कहे गये लेकिन सच्चा समाजवाद यूरोपियन सोशॅलिस्टों ने ही अपनी कल्पना में देखा। बड़े दिव्य स्वप्न थे उनके। इनमें से था फ्रांस का फोरियर। उसने कहा जिस दिन लेजर—अवकाश, आराम और लेबर—श्रम, दोनों एक दूसरे के नजदीक आयेंगे और जिस दिन उत्पादक परिश्रम खेल की तरह आनंदमय होगा और उत्पादन के औजार खिलौने बन जायेंगे वह क्रांति की सफलता का दिन होगा।

रवि ठाकुर ने कहा है, श्रम और विश्राम, दोनों से संजीवन होता है। श्रम और विश्राम का अनुबंध होना चाहिए। मैंने आपसे कहा कि संयोजन और शिक्षण ये दोनों एक दूसरे से जुड़ जाने चाहिए। तब इसके पीछे शिक्षण के साथ व्यायाम भी आयेगा, संजीवन भी आयेगा।

फेस टु फेस सोसायटी

इधर एक विवाद चलता है, उद्योग स्माल स्केल हो या लार्ज स्केल हो! छोटे पैमाने के हों या बड़े पैमाने के? ये शिबलेथस् हैं, कैचवर्डस्! आप इनके चक्कर में मत जाइये। मैंने एक कहानी सुनायी थी। एक दामाद अपनी ससुराल में गया। कुछ दिन रहा। वहाँ एक चिट्ठी आयी। चिट्ठी देखकर वह रोने लगा। अब उसकी स्त्री ने समझा कि कोई बहुत खराब समाचार चिट्ठी में होगा। तो वह भी रोने लगी। सास ने देखा कि ये दोनों रो रहे हैं तो वह भी सहानुभूति में रोने लगी। पड़ोसियों ने देखा कि यहाँ तो कोहराम मचा है। इतने रो रहे हैं। जरूर कुछ हो गया है तो वे भी सब रोने लगे। एक सयाना आदमी वहाँ से जा रहा था। उसने पूछा, कि माजरा क्या है, क्यों रो रहे हैं सब इस मकान में? तो हर एक दूसरे की तरफ उँगली दिखाने लगा। आखिर में दामादबाबू का नंबर आया। उससे पूछा, कि तुम क्यों रो रहे हो? उसने कहा, मैं सिर्फ ब्लाक लेटर्स सीखा हूँ। और यह तो घसीटी में चिट्ठी आयी है। इसलिए मैं रोने लगा। लार्ज स्केल और स्माल स्केल का यही झमेला है। ये शिबलेथस् हैं। बुनियादी चीज मैंने बतायी। क्या उद्योग में से मनुष्य का विकास होता है? पशु का विकास होता है? क्या सृष्टि के संबंधों का विकास होता है? ये उसकी कसौटियाँ हैं। ये पहचानें हैं। यह परख है।

इसके लिए फेस-टु-फेस सोसायटी की आवश्यकता है। फेस-टु-फेस सोसायटी से मतलब यह है, कि जहाँ उत्पादक और उपभोक्ता एक-दूसरे से अपरिचित नहीं रहेंगे। नो इम्पर्सनल प्रोडक्शन एण्ड नो एनानीमस डिस्ट्रीब्यूशन। यह राजनीति में भी नहीं हैं और अर्थनीति में भी नहीं है। पालि-

टिक्स में अगर नागरिक अॅनानिमस रहा, पार्टीयाँ ही रहीं तो क्या होगा! सिर के नाप की टोपी नहीं, टोपी के नाप का सिर बनाना पड़ेगा। जो पार्टी सत्ता में होगी उसके नाप का सिर बनाओ। फिर ये हेअर-कटिंग सलून में आप बाल कटवाने नहीं जावेंगे बल्कि सिर ही तरसवाने जाना होगा। क्यों कि टोपी के नाप का बनाना है। इसी तरह अॅनानिमस प्राडक्शन और अॅनानिमस डिस्ट्रिब्यूशन में मनुष्य के नाप की चीज नही बनेगी। चीज के नाप का मनुष्य बनेगा। इसे 'कंजूमर्स सोसायटी' कहते हैं। यह अमानवीय है। उत्पादक और उपभोक्ता दोनों नामवर होने चाहिएं। उत्पादक को उपभोक्ता जानता हो और उपभोक्ता को उत्पादक जानता हो। यह फेस टु फेस सोसायटी है। और अॅनानिमस सोसायटी क्या है?—ए सोसाइटी इन विच देयर आर सेवरल ह्यूमन बीइंग्स हू डू नाट बिलोंग टू एनी ट्राइब। नोमॅडस् होते हैं न जैसे शहरों में रहते हैं। बीहाइव सोसायटी—बीहाइव पॅटर्न के मकान में जो रहते हैं, वे इसी तरह के लोग हैं। उनकी बात नहीं कह रहा हूँ। यहाँ ट्राइब से मतलब है कुटुंब। फॅमिलिअ्रल सोसायटी। कौटुंबिक समाज। इंस्टिटयूशनल सोसायटी और फॅमिलिस्टिक सोसायटी में सबसे बड़ा अंतर यह है कि इंस्टिटयूशनल में मेंबरशिप है और फॅमिलिस्टिक सोसायटी में रिलेशनशिप। रिलेशनशिप होना चाहिए, मेंबरशिप नहीं। मेंबरशिप बदली जा सकती है, रिलेशनशिप बदली नहीं जा सकती। इंस्टिटयूशनल सोसायटी में क्या होता है। ओरगनायजेशन आफ मैन। अब मनुष्य का एक और संस्करण हुआ। पहले मारकेट ओरिअंटेशन हुआ, सायकालाजिकल ओरिएंटेशन हुआ। आजकल चल पड़ा है, आरगनायजेशनल ओरिएंटेशन। संस्था का मनुष्य अब मनुष्य कहीं रह ही नहीं गया है। वह संस्था में खो गया है और टोटेलिटेरियन समाज में ही नहीं, जिसे आप वेलफेअर सोसायटी कहते है उस वेलफेअर सोसायटी में भी व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है। वह स्टेटिज्म ही है। जैसे डिक्टेटरशिप में स्टेटिज्म है वैसे वेलफेअर सोसायटी में भी स्टेटिज्म ही है। वहाँ अब मनुष्य का मूल्य नहीं रहा। मनुष्य की कीमत नहीं है।

मूल्य और कीमत

तो अब इसको बदलने के लिए क्या करना चाहते हैं? हम प्राइस से वैल्यू की तरफ, कीमत से मूल्य की तरफ जाना चाहते हैं। वी वान्ट ए वैल्यू ओरियेन्टेड इकोनामी एन्ड नॉट ए प्राइस ओरियंटेड इकोनामी प्राईस टैग हर चीज पर हो। इस एकानामी का नाम क्या रखा है मालूम है न! एकानामी आफ एक्सचेंज वैल्यू। जितना प्राडकशन होगा वह या तो बार्टर के लिए होगा या सेल

के लिए होगा और मेरी जरूरत अगर ऐसी है कि जिसमें कोई बार्टर भी नहीं हो सकता और परचेजिंग पॉवर भी नहीं है तो मुझे मरना पड़ेगा। और यह मैं किसी गांधी की बात नहीं कह रहा हूँ। यही मार्क्सिज्म है, यही सोशेलिज्म है, यही कम्युनिज्म है। यहाँ तक हम पहुँच गये हैं कि उपयोग के लिए उत्पादन होगा, बाजार के लिए नहीं। प्रतिमूल्य के लिए नहीं। एक्सचेंज के लिए नहीं। अर्थात अगर प्रतिमूल्य के लिए नहीं और इस्तेमाल के लिए है तो क्या होगा? इक्विटेबल डिस्ट्रीब्यूशन होगा, शेयरिंग नहीं होगा। क्लब्स में क्या होता है? पचास मेंबर्स हैं और पाँच सौ लड्डू बने हैं। हरेक के दस दस हुए। फिर वहाँ का जो रसोइया है वह दस अपने पहले से ही निकाल कर रख लेता है। क्यों? ये मेंबर्स अगर दस की जगह ग्यारह ग्यारह खा लें तो मेरा क्या होगा? समाजवाद में बराबर वितरण तो है, अस्सी साल के बूढ़े को भी दस लड्डू और दस महीने के बच्चे को भी दस लड्डू। परिवार में वितरण नहीं शेअरिंग होता है। बूढ़ा दो लड्डू खा सकता है तो दो ही खायेगा। लड़का जवान है तो बीस खा सकता है। आखिर माँ के लिए कुछ भी नहीं बचा तो बड़ी खुश है कि मेरे लिए एक भी नहीं बचा।

मनुष्य का जीवन-सहजीवन

यह तो भावनात्मक कंटेंट है, यह आरगनायजेशन में नहीं आता है। रिलेशनशिप में आता है। इस लिए मनुष्य की विशेषता रिश्तेदारी है। अलगाव में, दूरी में जीवन नहीं है। जीवन सहजीवन है। मनुष्य का मनुष्य के साथ रहना सहजीवन है। हर मनुष्य किसी न किसी प्रकार का उत्पादक या उपयोगी परिश्रम करेगा, दूसरों के लिए, पड़ोसी के लिए।

पड़ोसी कौन ?

और यह पड़ोसी कौन है? तो बायबल ने कहा है, जहाँ दुःख हो, वह इस पृथ्वी के किसी भी कोने में हो, वह तुम्हारा पड़ोसी है। वह मेरे लिए मानवता का सगुण रूप है। मानवता का विश्वरूप है।—मैन कैपिटल। और मेरा पड़ोसी मानवता का चतुर्भुज रूप है। तो अब कहाँ पहुँचे हम?

मुनाफे के लिए उत्पादन—पूंजीवाद
उपयोग के लिए उत्पादन—समाजवाद
पड़ोसी के लिए उत्पादन—मानवता

मैं इसे गाँधीवाद नहीं कहता हूँ। क्योंकि गांधी पर भी लेबल लगा दूँ तो वह गांधी गांधी नहीं रहेगा। गांधी वाज ओनली दी अनलेबिल्ड इनडिविज्यूअल

दैट वाज वौर्न ग्राफ्टर सेंचरीज, तो गांधी मत कहिये, सर्वोदय मत कहिये। यह कहिये कि उत्पादन मनुष्य के लिए होगा। पड़ोसी के लिए उत्पादन होगा। पड़ोसियत को ही गांधी ने 'स्वदेशी' कहा। यह गांधी के ग्रामोद्योग का अर्थ है। ग्राम-संजीवन का अर्थ है, पड़ोसी के लिए उत्पादन होगा। और यह पड़ोसी है कहाँ ? यह मेरे गाँव में, मेरे साथ, मेरी बगल में है। और यह पड़ोसी दूर अमेरिका में भी है। क्षितिज तक मेरा पड़ोसी है। लेकिन आज क्या हो रहा है? हम एक दूसरे के पड़ोस में तो रहते हैं लेकिन एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते। सभी धर्मों में एक आदेश है—'पड़ोसी पर प्रेम करो'। इस विधान पर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। यह कहने के लिए धर्म की क्या आवश्यता है, ऐसा लगता था। पर जैसे जैसे उम्र बढ़ती गई तो मैंने देखा कि पड़ोसी पर प्रेम करना बड़ा कठिन कार्य है। संसार में चाहे जिस पर प्रेम किया जा सकता है, पड़ोसी पर करना मुश्किल है। इसका मुख्य कारण यह है कि पड़ोसी हम नहीं चुन सकते। पड़ोसी हमारे हाथ की बात नहीं है। यह कौन है ? मेरा मित्र है। मित्र कैसे हुआ ? मैंने बनाया। वह कौन है ! मेरा शत्रु है। शत्रु शत्रु कैसे है ? मैंने किया। मैंने माना इसलिए मित्र है; मैंने माना इसलिए शत्रु है। लेकिन पड़ोसी मेरे मानने पर नहीं है। वह है इसलिए है। यह पड़ोसी मेरा मित्र, सखा बनना चाहिए।

फेस-टु-फेस सोसायटी वह होगी जहाँ मनुष्य एक दूसरे को जानेंगे। अब इसको गाँव कहिये, चाहे जो कह लीजिये। लेकिन आज का गाँव क्रांति के लिए अनुकूल गाँव नहीं है। आज का गाँव जीर्णमतवादी है। लोग मुझसे कहते हैं गाँव भगवान ने बनाया है और मनुष्य ने शहर बनाया। गाँव वाले बड़े सीधे-सादे, बहुत अच्छे होते हैं। बड़े चरित्र्यवान होते है। गाँव वाले चरित्र्यवान इसलिए होते हैं कि मौका नहीं है उनको बुराई का। जितना मौका उनको मिलता है उतनी बुराई कर लेते हैं। शहरवालों को मौका कुछ ज्यादा होता है। लेकिन शहरवालों की आशा भी बढ़ जाती है। बंबई के आदमी से पूछो तो वह मानता है, कि सत्तर लाख मनुष्यों में से वह एक है। और गाँव का मनुष्य सात सौ मनुष्यों में से एक है। उसके जीवन का आशय, उसका इमोशनल कंटेंट बदल जाता है। हमको क्षेत्रवाद में नहीं डूबना है। उसमें से बौने आदमी—ड्वार्फ्स पैदा होंगे। हमको तो मनुष्य की ऊँचाई बढ़ानी है। उसका कद बढ़ाना है। उसके दिल का आकार बढ़ाना है। मनुष्य का मन भी स्वस्थ हो और शरीर भी स्वस्थ हो। वह हर तरह से चंगा हो। इस तरह का जो समाज होगा वह होगा आकार से बहुत छोटा लेकिन उसका आशय बड़ा होगा।

नकल नहीं बनो

तरुण मित्रों से एक बात कह देना चाहता हूँ। वह यह है कि 'बी ओरिजिनल'। क्रांति की कहीं नकल होती है ? यह न कहो, कि आज तक यह किसी ने किया है क्या ? यह हिलेरी तेनसिंह जब चढ़ गये एवरेस्ट पर तो क्या उन्होंने किसी से पूछा था, कि कोई पहले चढ़ा है क्या ? कोलम्बस जब नयी दुनिया की खोज में निकला तो क्या उसने पूछा था कि किसी ने पहले खोज की है क्या ? सिद्धार्थ ने जब महल और परिवार का परित्याग किया होगा तो उसने पूछा होगा कि इससे पहले किसी ने यह किया है क्या ? क्या गांधी ने किसी से पूछा था कि क्या तलवार के बिना किसी देश को कभी राज्य मिला है ? क्या जयप्रकाश ने किसी से पूछा था कि इस वक्त अगर मैं लोक-आंदोलन का आरंभ करता हूँ तो सफल हूँगा कि नहीं हूँगा ? जिसे क्रांति करनी होती है वह सीधे कदम उठाता है। सवाल है, पहला कदम कौन उठाये ? सभी एक दूसरे की राह देखते रहेंगे तो 'आय' का बहुवचन 'वी' कभी नहीं होगा। सारे के सारे हिचकिचाते रह जायेंगे। हिसाब करते रह जायेंगे। इसके लिए तो डेयर-डेविल चाहिए। हू विल रश वेयर डेविल फीयर टू ट्रेड। ऐसे तरुणों की आवश्यकता क्रांति के लिए होती है। उसका आह्वान एक डेयर-डेविल कर रहा है—७५ साल का एक तरुण। इसका कारण यह है कि इसको अपनी उम्र का ख्याल नहीं रहता। उम्र का ख्याल हम जैसे लोगों को रहता है। यू काउन्ट युअर ईयर्स बीकाज यू हैव नथिंग एल्स टू काउन्ट। जयप्रकाश एक ऐसा व्यक्ति है जिसके साथ काल खेल नहीं सकता है। काल की मर्यादा उनको लागू नहीं है। ७५ साल का हुआ, वृद्ध हुआ लेकिन जरा नहीं आयी। इस तरह के कुछ बिरले ही व्यक्ति होते हैं। जयप्रकाश जी ऐसे एक हैं। उन्होंने आज इस देश के तरुणों का, इस देश की तरुणाई का आह्वान किया है मैं आशा करता हूं। उनके आह्वान का योग्य प्रत्युत्तर इस देश की तरुणाई देगी।

तीन

पीपुल और मॉब
शैतान को भी हक
विश्वस्त कल्पना-ट्रस्टीशिप
गरीबी और अमीरी का झगड़ा
सहयोगात्मक क्रांति—भूदान, ग्रामदान
श्रम और उपभोग
धर्म अध्यात्म नहीं है
संगठित धर्म यानी संप्रदाय
संप्रदाय में से पाकिस्तान का निर्माण
प्रतिसंप्रदायवाद
संप्रदाय के लक्षण
हिंदू किसे कहें ?
जातिवाद और उसका निराकरण
जाति के लक्षण
हमारे गाँव जातिस्तान हैं
मिडलमैन-बिचौलिया नहीं चाहिए
भाषावाद
लिपी और भाषा
भाषिक राज्य-दुर्घटना
राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ
स्त्री-पुरुष-भेद निराकरण
स्त्री क्रय-विक्रय की वस्तु
ब्रह्मचर्य का सामाजिक अर्थ
सहजीवन और सहनागरिकत्व
स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य
स्त्रियों को डर छोड़ना चाहिए
दुनिया मनुष्य का मकबरा न बने
वेदान्त-विज्ञान-विश्वास
आत्मवान पुरुष

करता है वह काम समाज का है उस काम के उपकरण भी समाज के हैं, उसके अपने नहीं। हम पहले यह मांग करते हैं. कि 'उत्पादन के साधन उत्पादक के कब्जे में होने चाहिए।' बाद में हम यह माँग करते हैं. कि 'उत्पादक भी उनका ट्रस्टी होगा। वह उन उपकरणों का और उत्पादन का भी अपने आपको मालिक नहीं मानेगा।' यह शाश्वत ट्रस्टीशिप है।

गरीबी और अमीरी का झगड़ा

संपत्ति-निराकरण के अब तक तीन तरीके अपनाये गये हैं एक्सप्रोप्रियेशन—छीनना। स्वामित्व और संपत्ति को छीन लो। उसका प्रतिहरण करो। दूसरा तरीका है—कनफिस्केशन। कानून से जब्त कर लो। और तीसरा है टैक्सेशन। इस तरह से उस पर टैक्स लगाओ कि धीरे धीरे वह कम होती चली जाय। ये तीनों तरीके आज तक अपनाये गये। गांधी ने कहा, इसमें मनुष्य मनुष्य के नजदीक नहीं आयेगा। स्वामित्व और संपत्ति का निराकरण तो होना चाहिए। लेकिन इसके निराकरण की प्रक्रिया ऐसी हो जिसमें इन्सान एक दूसरे के नजदीक आयेंगे। आज गरीब और अमीर की तबियत में कोई फर्क नहीं है। हर गरीब अमीर बनना चाहता है। हर अमीर गरीबी से डरता है। हर मालिक दाम-चोर है, हर मजदूर काम-चोर है। इन दोनों की तबियत बिगड़ी हुई है। दोनों बीमार हैं। गरीब की बीमारी गरीबी है, अमीर की बीमारी अमीरी है। गरीब समझता है, मैं बीमार हूँ, अमीर समझता है, मैं बीमार नहीं हूँ। यह फर्क है। लेकिन यूँ दोनों के सायकोलोजिकल क्लासेस नहीं है। फिर भी जे० पी० ने वर्ग संघर्ष की बात कही और वह अहिंसात्मक सत्याग्रह होगा, यह भी कहा। इसका मतलब इतना ही है कि जे० पी० के संस्कार गांधी, विनोबा से अलग हैं। गांधी-विनोवा के संस्कार वेदान्त के हैं, भारतवर्ष के हैं। जे०पी० के संस्कार भारतवर्ष के भी हैं, लेकिन वे अधिकतर मार्क्स के हैं। इसलिए दोनों की भाषा में, शब्दावली में फर्क हो जाता है।

मैं कहना यह चाहता हूँ, कि जो गरीब है, खोया हुआ है, पिछड़ा हुआ है उसके पुरुषार्थ से क्रांति होनी चाहिए। यही तो क्लासवार का मतलब था न! जिस क्लास को क्रांति की जरूरत होगी, उस क्लास के प्रयत्न से क्रांति होगी—प्रोलितारियत द्वारा। परिभाषा भूल जाईये। परिभाषा विद्वानों के लिए होती है। विद्वान परिभाषा में बोलते हैं, भाषा में नहीं बोलते। परिभाषा में इसलिए बोलते हैं कि उनकी कुछ धाक जम जाय। उससे रोब जमता है। एक वार जान्सन से किसी ने पूछा, नेट किसे कहते हैं। अब यह जो टेनिस का नेट होता है उसकी व्याख्या कोई कैसे समझाए! लेकिन जानसन ने अपनी धाक जमा

दी। उसने कहा, इट इज ए रेटीक्यूलेटेड फैब्रिक डेक्यूसेटेड एट रेगुलर इंटरवल्स। बस ! इससे धाक तो जम गयी लेकिन पूछनेवाले की समझ में कुछ नहीं आया।

सहयोगात्मक क्रांति—भूदान-ग्रामदान

हवा-पानी के बाद अन्न आता है। हमारा देश किसानों का है, खेती का देश है लेकिन साथ साथ भूखों का भी देश है। इसलिए मुख्य समस्या अन्न की है। इसका इलाज है, अन्न के उत्पादन के साधन, अन्न के उत्पादन के औजार और अन्न इन तीनों के बाजार भाव नहीं होने चाहिये। इनके सिर्फ मूल्य ही रहें। इसका प्रयोग इतिहास में पहली बार विनोबा ने किया। यह था भूदान और ग्रामदान के रूप में। और मैं समझता हूं, कि सहयोगात्मक क्रांति का यह पर्व दुनिया के इतिहास में एक अद्‌भुत पर्व है। विनोबा को जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी, नहीं मिली। मुझे इसका कोई रंज नहीं है। ऐसे प्रयोगों में असफल होना भी बड़ा सद्‌भाग्य है। बड़ी मुकद्दर की बात है। प्रयोग करने की हिम्मत तो हुई उनको।

लोकमान्य तिलक की जीवनी का एक प्रसंग है। एक आदमी उनके पास आया और कहने लगा, कि आपके स्वीमिंग पूल में लोगों को तैरना सिखाना चाहता हूँ। तिलक ने पूछा, आपकी योग्यता क्या है। उसने कहा, कि मैं कभी पानी में डूबा नहीं हूँ। लोकमान्य ने कहा, मैं भी पानी में दो चार बार डूबा, लेकिन आप बिलकुल डूबे नहीं तो बड़े तैराक होंगे। आप जरूर सिखाइये। लेकिन यह बताइये कि ऐसी कौन सी सिफ्त आपके पास है, जिससे आप कभी पानी में डूबे ही नहीं ? उसने कहा, मैं कभी पानी में गया ही नहीं।

जिन्होंने कभी प्रयोग ही नहीं किया, कभी हिम्मत ही नहीं की वह कभी असफल नहीं हुआ। जो कभी इम्तेहान ही में नहीं बैठा वह फेल होगा ही कैसे ?

श्रम और उपभोग

मैं बात कर रहा था ट्रस्टीशिप की। ट्रस्टीशिप में भावना दान की नहीं सहयोग की ज्यादा है। बँटवारे की है, समविभाग की है। स्वामित्व और संपत्ति के विसर्जन की है। करोड़ों जमा करते जाओ और दान करते जाओ यह ट्रस्टीशिप में नहीं है। यह तो सौदापन है। इसमें किसी प्रकार की ट्रस्टीशिप नहीं है। ट्रस्टीशिप वर्ग निराकरण के लिए है, वर्ग-समन्वय के लिए नहीं। वर्ग समन्वय अवांछनीय है और असंभव है। विनोबा का भूदान-ग्रामदान भूमि को बाजार से उठाने के लिये था। भूमि का कोई भाव नहीं रहेगा। जमीन का भाव नहीं, जमीन के औजारों का भाव नहीं, अन्न का भाव नहीं। जमीन किसी की नहीं। औजार किसी के नहीं। और जो मेहनत करता है उसकी मेहनत के भी नहीं।

लोक-क्रांति के आयाम

पीपुल और मॉब

आज शुरू में ही आपसे एक बात कहना चाहता हूँ, कि संघर्ष अलग चीज है। झगड़ा अलग चीज हैं। झगड़े में दुश्मन होता है। संघर्ष में दुश्मनी नहीं होती जहाँ झगड़ा होता है वहाँ तनाजा होता है। आदमी आदमी से बिछुड़ जाता है। तनाव पैदा होता है। इसमें से क्रांति नहीं होती। क्रांति में विरोध की प्रक्रिया है लेकिन झगड़ा नहीं है। इसलिए बार बार कहता आया हूँ, कि किसी भी स्तर पर कहीं भी हिंसा होती है तो वह हमारी क्रांति के प्रतिकूल है। जो हिंसा करता है वह क्रांति का दुश्मन है। सब तरफ आज हिंसा का वातावरण है। दंगा-फसाद का वातावरण है। इसका मतलब लोक-राज्य नहीं होगा। भीड़ का राज्य होगा। पीपुल और क्राउड में बहुत फर्क है। मॉब पीपुल नहीं है। मॉब में बहुत से सिर होते हैं। लेकिन दिमाग एक भी नहीं होता। बहुत से सीने होते हैं लेकिन हृदय नहीं होता। मॉब का राज हड़बोंग का राज्य है। चौपटराज है। चौपटराज लोकतंत्र नहीं है। इस फर्क को हमें बहुत अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये। नहीं तो ऐसा होगा कि हम पहुँचना कहीं चाहते हैं और पहुँचेंगे कहीं और। हम लोकतंत्र से लोकसत्ता की तरफ पहुंचना चाहते हैं। वहाँ पहुंचने के बदले हम गुंडों के राज की तरफ जायेंगे और इस तरह दुबारा पुलिस के राज को निमंत्रण देंगे अपनी करतूतों से।

शैतान को भी हक

लोकतंत्र में हर व्यक्ति को यह हक हासिल है कि वह अपनी बात कहे और वह लोगों में पहुंचे। रोमन कैथालिक चर्च में एक डिग्निटरी होता है—एक आफि-

शियल । उसका नाम है, एडवोकेटस डायाबोलिक्स—शैतान का वकील । भगवान ने अगर सब कुछ बनाया है तो शैतान को भी उसीने बनाया होगा । वह भी तो भगवान की औलाद होगा । उसे अपनी बात कहने का पूरा पूरा मौका होना चाहिए । डिसेन्ट इज दी आक्सीजन आफ डेमोक्रेसी । इस बात को हम नहीं भूलें । यह इमरजेंसी के वक्त नहीं था, यही तो हमारी शिकायत थी । मैं तो प्राइमरी स्कूल के टीचर जैसा हूं । मामूली चीजें जो हजारों लोगों ने और हजारों बार सुनी होंगी उन्हीं को दोहरा रहा हूँ, कि ये चीजें हम भूल जाते हैं; हम उनको न भूलें । कोई नयी बात नहीं कह रहा हूं । सिर्फ याद दिला रहा हूं ।

विश्वस्त कल्पना—ट्रस्टीशिप

सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांति कैसे हो इसका विचार हम इस समय करने वाले हैं । मैंने आपसे कहा था कि हमको कदम बढ़ाना है 'कीमत' से 'मूल्य' की तरफ । वस्तु का जीवन में महत्व, इसका नाम मूल्य है । हवा की कोई कीमत नहीं है, लेकिन हवा के बिना हम जी नहीं सकेंगे । जो वस्तु जीवन के लिए जितनी ज्यादा आवश्यक हो वह वस्तु उतनी सुलभ होनी चाहिए । यानी मुफ्त में मिलनी चाहिए । हवा मुफ्त में मिलनी चाहिए । पानी मुफ्त में मिलना चाहिए । और हो सके तो अन्न और कपड़ा भी मुफ्त में मिलना चाहिए । यहाँ से मूल्य परिवर्तन का आरंभ होता है । गांधी ने इसे आरंभ करने के लिए ट्रस्टीशिप—विश्वास कल्पना की बात रखी । यह कोई कोरी फिलासफी नहीं है । ट्रस्टीशिप एक प्रैक्टिकल पालिसी है । वह एक नीति है, स्वामित्व और संपत्ति के निरा- करण की ।

इसको जरा समझ लेने की आवश्यकता है । लोगों ने ट्रस्टीशिप का मतलब यह कर लिया है, कि ब्याज भी लेते जाओ और उस धन को बढ़ाते भी चले जाओ, उसके विषय से आसक्ति भी रखो । अंत में केवल इतना करो कि इसका भोग भगवान को लगा दिया करो । ट्रस्टीशिप का अर्थ है, परंपरा से और परिस्थिति से जो धन तुझे प्राप्त है, उसे दूसरों का समझकर जल्दी से जल्दी उससे मुक्त हो जा । किशोरलाल भाई ने (किशोरलाल मश्रूवाला) सार्वजनिक संस्थाओं के बारे में लिखा था, कि सार्वजनिक निधियों को भी हम ब्याज ले-लेकर बढ़ाते हैं । यदि व्यक्तिगत परिग्रह, व्यक्तिगत संग्रह निषिद्ध है तो सार्वजनिक संग्रह भी कम निषिद्ध नहीं है ।

ट्रस्टीशिप के दो पहलू हैं । एक है, संक्रमणकाल के लिए व्यवस्था । पूंजीवादी समाजव्यवस्था से हमें श्रमनिष्ठ समाज व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाना है । इसके लिए संग्रह के विसर्जन की आवश्यकता है । ट्रस्टीशिप का दूसरा पहलू है—केवल धनिक ही ट्रस्टी नहीं, श्रमिक भी ट्रस्टी है । श्रमिक जहाँ काम

या गुट का नाम नहीं लेना चाहता; लेकिन एक-बात आपसे कह दूं कि इस देश में संप्रदायवाद के लिए जिम्मेदार हमारे देश का मुसलमान है। बहुसंख्यक की बात मैं कर रहा हूँ। उसने यह माना कि इस्लामियत ही कौमियत है। जिन्होंने यह नहीं माना वे काफिर रह गये।—मुसलमान होते हुए भी। गांधी को भी काफिर कहा गया। एक महान मुस्लिम नेता ने गांधी के बारे में कहा, कि "मनुष्य की दृष्टि से गांधी महान है, लेकिन धर्म की दृष्टि से गांधी किसी भी मामूली मुसलमान से भी छोटा है।" इस्लामियत ही कौमियत है। मैं इस्लाम हूँ इस लिए मेरी कौम भी अलग है। इस्लामियत ही राष्ट्रीयता है। यह उसने माना और इसमें से कौमियत को और इस्लामियत को बराबरी पर रखने से एक अलग देश की जरूरत हुई और पाकिस्तान उसमें से पैदा हुआ। यह धर्माश्रित राष्ट्रीयता है। व्हैन यू मेक युअर डिनॉमिनेशन आर कम्युनिटी दी बेसिस ऑफ युअर सिटीजनशिप, यू आर कम्युनल। संप्रदायवाद की यह परिभाषा आप ध्यान में रखें मैं अपने संप्रदाय को या पंथ को जब अपनी नागरिकता का आधार बनाता हूँ तो मैं जमातवादी हूँ। मैं कम्युनल हूँ। और इसका आरंभ मुसलमानों ने इस देश में किया। जो मुसलमान सही दिमाग रखते हैं वे भी और जो हिंदू सही दिमाग रखते हैं वे भी उनको जिम्मेदार मानेंगे। वे एक गलत चीज का प्रचार कर रहे हैं।

प्रतिसंप्रदायवाद

इसके साथ एक दूसरी चीज आती है, वह, है प्रतिसंप्रदायवाद। काउन्टर कम्युनॉलिज़्म। इसमें यह कहा गया है कि हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। एक बाजू में इस्लामियत ही कौमियत है। और जवाब में हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। एक मायनॉरिटी का कम्युनॉलिज्म है, दूसरा मेजॉरिटी का कम्युनॉलिज्म है। मेजॉरिटी में जो संप्रदायवाद होता है उसकी शक्ल-सूरत राष्ट्रीयता जैसी होती है। लेकिन है वह संप्रदायवाद ही। इसको जरा तटस्थता से मेरे साथ सोचिये। मनुष्य जब सोचता है तब वह कमिटेड नहीं होता। विचार, विचार है। उसमें ह्यूमिलिटी और डिटेचमेंट चाहिए। ह्यूमिलिटी का मतलब है, नो कमिटमेंट। मुसलमान कहता है, कि इस्लाम भारतीयता से भारतीय नागरिकता से ज्यादा व्यापक है। मैं मानता हूँ। तुर्किस्तान में भी इस्लाम है। अरबस्तान, अफगानिस्तान में भी इस्लाम है। पाकिस्तान, बांगला देश में भी इस्लाम है। तो भारतीयता से इस्लामियत व्यापक है। लेकिन वह भारतीयता तो नहीं है! वह नैशनलिटी नहीं है। इस्लामियतकौमियत तो नहीं है। अरबस्तान की कौमियत, तुर्कस्तान की कौमियत इन सबसे इस्लामियत व्यापक होगी, लेकिन बराबरी पर नहीं है। इसी तरह हिंदुत्व व्यापक है। मॉरिशस में से रामगुलाम आये हैं। वे हिंदु हैं। नेपाल में भी हिंदू हैं। अमेरिका

में भी हिंदू हो सकते हैं। लेकिन भारतीयता और हिंदुत्व एक नहीं हो सकते हैं। हमारा विवाद कहाँ है ? मनुष्यता सबसे व्यापक है। हम सभी मनुष्य हैं।

एक अर्थ में नैशनेलिटी व्यापक है। भारतीयता मैं उसको मानता हूँ, जिससे भारत में रहने वाला भिन्न धर्मीय मुझे भारत में रहने वाले स्वधर्मी से अधिक आत्मीय मालूम होता है। उसके लिए ग्रेटर किनशिप है। बाहर के हिंदू से यहाँ के मुसलमान-ईसाई को मैं नजदीक का मानता हूँ। वैसे ही बाहर के मुसलमान से यहाँ का हिंदू-ईसाई नजदीक का है। यह भारतीयता है। इस्लामियत या हिंदुत्व कौमियत से ज्यादा व्यापक तो जरूर है। जैसे कम्युनिज्म है। इसका नाम कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया रखा गया। आपको मालूम नहीं होगा, पहले इसका नाम रखना चाहते थे इंडियन कम्युनिस्ट पार्टी। लेकिन ऐसा नाम रख नहीं सकते थे क्यों कि इंडियन कम्युनिस्ट कोई चीज है नहीं। इसलिए आज का नाम रखा। इस तरह से कम्युनिज्म, सोशलिज्म ये सब व्यापक टर्म्स हैं। लेकिन भारतीय नागरिकता यह अपने में एक ऐसी कल्पना है जिसमें सबका समावेश है। इस देश में जितने धर्म और जितने संप्रदाय हैं उन सबका समावेश इसमें है। इसमें देश में रहने वाले सब आते हैं। सब शरीक हो सकते हैं। इकबाल ने कुछ ऐसा ही कहा है—यह हिंदुस्तान हमारा है और हम हिंदी हैं। पहले हम सब के लिए हिंदू शब्द चलता था। यहाँ का मुसलमान भी अमेरिका जाता था तो हिंदू कहलाता था वहाँ। यहाँ का ईसाई भी जाता था हिंदू कहलाता था। उस वक्त हिंदू शब्द इंडियन के लिए, भारतीय के लिए चलता था। लेकिन अब सवाल है कि जो मुसलमान नहीं है, ईसाई नहीं है, यहूदी नहीं है, पारसी नहीं, सिख नहीं, बौद्ध नहीं, जैन नहीं उसे क्या कहेंगे ?

संप्रदाय के लक्षण

मुस्लिम, ईसाई, यहूदी ये सब संप्रदाय हैं। संप्रदाय का क्या लक्षण है ? जिसे ले सकते हैं, जिसमें जा सकते हैं वह संप्रदाय है। मुसलमान आप बन सकते हैं, बौद्ध, ईसाई, जैन, सिख आप बन सकते हैं, लेकिन हिंदू बन नहीं सकते। संप्रदाय वालों की एक दूसरी पहचान है संप्रदाय में व्यक्ति भी होता है, समाज भी होता है, सिख व्यक्ति भी है। सिख समाज भी है। परंतु हिंदु व्यक्ति ही है, हिंदू समाज वास्तविकता नहीं है। जिस समाज में जाति होगी उस समाज में सांप्रदायिकता नहीं होगी हिंदु समाज जातिबद्ध, संकुचित, संकीर्ण समाज है। जो अन्य समूहों से विमुख होता है ऐसा समाज। संप्रदाय में दरवाजा खुला होता है। संप्रदाय हमेशा आक्रमणशील होता है। उसमें नियंत्रण है और लाने की कोशिश भी है। लेकिन हिंदू समाज एक चुस्त संप्रदाय बन ही नहीं सकता।

आखिर समाजवाद और साम्यवाद क्या है ! काम का दाम के साथ संबंध नहीं होगा, शक्ति के अनुसार काम होगा और आवश्यकता के अनुसार उपभोग होगा।

पूंजीवाद में क्या है ? बदला जितना अधिक होगा, संपत्ति उतनी ही बड़ी होगी। पूंजीवाद मानता है कि कि मेहनत संपत्ति है। लेकिन पूंजीवाद का दोष यह है, कि जिसकी मेहनत है, उसकी दौलत नहीं है। पूंजीवाद में मेहनत मजदूर की है, दौलत इन्सान की। पूंजीवाद शुरू होता है सौदे से, बढ़ता है सट्टे से और चरम सीमा पर पहुँचता है जुए से। सौदा, सट्टा, जुआ, पूंजीवाद कहलाता है। इसमें से तीन खराबियाँ पैदा होती हैं।—संग्रह, भीख और चोरी।

संग्रह, भीख और चोरी, इन तीन दोषों को मिटाने के लिए समाजवाद आया। समाजवाद का पहला कदम था—जिसकी मेहनत उसकी दौलत। मार्क्स ने लिखा, कि 'श्रमिक का जीवन समृद्ध करने का साधन परिश्रम होगा।" मार्क्स का दूसरा सूत्र, दूसरा कदम था, 'मेहनत हर एक की, दौलत सबकी।' इसे सामुदायिक संपत्ति कहते है। इसमें से दो चीजें पैदा हुई। एक है, 'कल्याण-कारी राज्य' और दूसरी है 'राज्य-स्वामित्व'। व्यक्ति की साहूकारी बंद हो गयी, समाज की साहूकारी, समाज की दूकानदारी शुरू हो गयी। इससे आगे चलना होगा। सामुदायिक संग्रह का भी लोभ छोड़ देना होगा। तो अब हमारा अगला कदम यह होगा, कि 'मेहनत इन्सान की, दौलत भगवान की।' उस हालत में श्रम में पवित्रता आ जायेगी।

धर्म अध्यात्म नहीं है।

सांस्कृतिक क्षेत्र का विचार हम कर रहे हैं। उसमें मनुष्य की कीमत नहीं, मूल्य होना चाहिए। आज मनुष्य पर भी 'प्राइस टैग' है मनुष्य की मनुष्यता बिकती है। अब मनुष्यों को एक-दूसरे की तरफ बढ़ना है। इसका मतलब एलि-अनेशन (अलगाव) से रिलेशनशिप (संबंधी) की तरफ जाना है। एलिअनेशन किन किन कारणों से है ?

पहला कारण है, धर्म। आपको मेरी बात भयंकर लगेगी लेकिन यह सही है। धर्म अध्यात्म नहीं है, इसको अच्छी तरह से समझ लीजिए रिलीजन इज नाट स्पिरीच्युलिज्म, रिलीजन इज नाट गाडलीनेस, रिलीजन इज नाट मोरालिटी। अध्यात्म, ईश्वर और नैतिकता इन तीनों चीजों को आप निकाल देते हैं तो उसके बाद जो बचता है। उसका नाम धर्म है।

मैं झूठ बोलता हूँ, हैरिस साहब नहीं बोलते होंगे, लेकिन समझ लीजिए झूठ बोलते हैं। तब भी वे मुसलमान हैं, मैं हिंदू। हम दोनों सच बोलते हैं, तब भी वे मुसलमान और मैं हिंदू। हम दोनों ईश्वर की भक्ति करते हैं तब भी वे

मुसलमान हैं और मैं हिंदू हूं। अब सच बोलना, झूठ बोलना, ईश्वर भक्ति दोनों के लिए कामन हो गये न! आप लोग जो गणित जानते हैं वे जानते होंगे कि जो कामन होता है वह कैंसल हो जाता है। इसके बाद जो बचता है वह धर्म है। फिर क्या बचा? मेरी जनेउ, हैरिससाहब की खतना। इसका नाम संगठित धर्म है। संगठित धर्म अधर्म है, आर्गेनाइज्ड रेलिजन इज इररेलिजन, क्योंकि ये तीनों उसमें नहीं समाते। संगठित धर्म का समाज बनता है। मैं मुसलमान बनता हूं याने क्या होता हूं! हिंदू समाज में से दूसरे समाज में जाता हूं मुसलमान ईसाई बनता है याने क्या होता है? वह भी एक समाज में से दूसरे समाज में जाता है।

विनोबा कुरान भी पढ़ते हैं, गीता भी पढ़ते हैं, बाइबल भी पढ़ते हैं। सबको वे समान मानते हैं। अवेस्ता भी पढ़ते है, जपुजी भी पढ़ते हैं। अब यह आदमी रोज बाइबल पढ़ने लगे तो ईसाई बनेगा। कुरान पढ़ने लगा, मुसलमान बना। इस तरह समाज बनते हैं। किसी ने एक दफा विनोबा से पूछा, आप महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हैं, तो कोकणस्थ हैं या देशस्थ? विनोबा ने बड़े मजे की बात कही। उन्होंने कहा, मैं देश में रहता हूँ इसलिए 'देशस्थ' हूँ। काया में रहता हूँ इसलिए 'कायस्थ' हूँ। और सबसे आखिरी में मैं अपने में रहता हूँ इसलिए 'स्वस्थ' हूँ। तो सब कुछ हूँ। ऐसा सवाल ही आप मुझसे क्यों पूछते हैं? मैं हिंदू हूँ इसलिए मुसलमान नही हूँ ऐसा नहीं है। मैं हिंदुस्तान में रहता हूँ इस लिए तुर्कस्थान मेरा नहीं है ऐसा नहीं है।

संगठित धर्म यानी संप्रदाय

धर्म जब संगठित होता है तब उसका समाज बनता है और फिर धर्म के नाम पर युद्ध होते हैं। धर्म के नाम पर दुनिया में जितना खून बहा है उतना न स्त्री के लिए बहा है, न जमीन के लिए बहा है। न तख्त के लिए बहा है। यह शैतान की तजवीज हो जाती है। संगठित धर्म भगवान की नहीं, शैतान की तजवीज है। नापाक तजवीज है। आज जो संगठित धर्म है उसका नाम संप्रदाय है। उसे मैं संप्रदाय कहता हूँ— डिनोमिनेशन। वह धर्म नहीं है। उपासना करना अलग है। विष्णु की पूजा करो, शिव की पूजा करो। लेकिन उसका संगठन क्यों करो? संप्रदाय में संख्या मुख्य है, मनुष्यों की तादाद मुख्य है; मनुष्य और ईश्वर मुख्य नहीं हैं। एक आपका ईश्वर है और दूसरा मेरा ईश्वर है। जब तक एक है, तभी तक वह ईश्वर है। जहाँ अनेक हो गये, वहाँ सब के सब शैतान हो गये। गोल्डस्मिथ ने एक दफा विनोद में कहा, "मैं अपने जूते जिस तरह मोची से लेता हूँ, उसी तरह अपना धर्म पुरोहित से लेता हूँ।"

संप्रदाय में से पाकिस्तान का निर्माण

संगठित समाज में बंद समाज— क्लोज्ड सोसाइटी, बन जाती है। मैं किसी संस्था

समाज की कमजोरी है। जब तक यह कमजोरी रहेगी तब तक वह नखशिख-खान्त शस्त्रों से लैस हो जाय तब भी उसमें शक्ति नहीं आने वाली है।

हमारे गाँव जातिस्थान हैं

मैंने कहा था हमारे गाँव कम्युनिटी नहीं बन सके। अगर वहाँ पाकिस्तान है तो इधर हर गाँव में जातिस्तान है। एक-एक मुहल्ले की एक-एक जाति है और गाँव के बाहर जो रहता है वह अछूत है। यह गाँव का नक्शा है। इस नक्शे को बदलना होगा। जे० पी० एक प्रतीक लेते हैं, जनेऊ। जनेऊ तोड़ने से क्या होगा? यह केवल एक बाह्य प्रतीक है। ब्राह्मण का लड़का जूते की दुकान खोलता है, तब भी वह चमार नहीं बनता। और चमार का बेटा प्रोफेसर बन जाता है तब भी वह ब्राह्मण नहीं बनता। आंबेडकर कितना वेद सीखा हुआ था न! लेकिन किसी ब्राह्मण ने उसके घर में शादी की थी! इसके स्वरूप को समझ लेने की आवश्यकता है। निरामिष आहार, सामिष आहार बिलकुल भिन्न भूमिका का सवाल है। उसका जाति और पैदाइश के साथ कोई संबंध नहीं है। उसका वैज्ञानिक विचार हो सकता है। सांस्कृतिक विचार हो सकता है। वह किया भी जाना चाहिए। बर्नार्ड शॉ से किसी ने एक बार पूछा, आप माँस क्यों नहीं खाते? तो उसने जवाब दिया, आई डू नॉट वान्ट टू ईट कैरेकेसैस। मैं मुर्दा नहीं खाना चाहता। अगर मैं कल मुस्लिम हो जाऊँ तो क्या मुझसे यह कहा जाएगा कि माँस खाना लाजिमी है? क्या ईसाई के लिए यह लाजिमी होगा कि वह माँस खाये? वह बिलकुल भिन्न भूमिका का प्रश्न है।

तो पहला संप्रदायनिराकरण, दूसरा जातिनिराकरण। संप्रदायनिराकरण के लिए पहली चीज यह होनी चाहिए कि धर्मपरिवर्तन बंद हो जाय। धर्म अगर समान हैं तो एक धर्म में से दूसरे धर्म में जाने की क्या आवश्यकता है? उपासना आप किसी की भी कर सकते हैं। धर्मपरिवर्तन बंद हो जाना चाहिए। जाति का अगर अंत करना है तो सजातीय विवाह बंद हो जाने चाहिए। जाति-निराकरण के लिए मिश्र विवाह आवश्यक हैं। एलिअनेशन (अलगाव) के ये जो प्रकार हैं ये मनुष्य-मनुष्य में विच्छेद पैदा करते हैं। इसके आगे है अपारथीड (रंग-भेद), काले और गोरे। अफ्रीका के काले लोगों को अलग बस्तियों में रखो। इससे आगे है छुआछूत। जाति का उग्र रूप छुआछूत है। इसी में से पैदा होता है झेनोफोबिया। इसका अर्थ है, पराये से डरना। जो अपना नहीं है उससे डरना। आज की जो नैशनैलिटी है उसमें झेनोफोबिया है। यह जब तक है तब तक मनुष्य मनुष्य से मिल नहीं सकता।

मिडिलमैन--बिचौलिया नहीं चाहिए

इसके साथ एक और चीज कह देता हूँ आपको। समाज में तीन बिचौलिये हैं। एक का नाम पुरोहित है। उसका काम है भगवान और भक्त को नजदीक नहीं आने देना। दूसरे का नाम है दलाल, जो बाजार में होता है। उसका काम है प्रोड्यूसर और कंजूमर को न मिलने दे। तीसरा है पॉलिटीशीयन और लीडर। इसका काम इतना ही है, कि एक नागरिक को दूसरे नागरिक के नजदीक न आने दे। समाज में से इन तीनों बिचौलियों को हटाना होगा तब क्रांति होगी।

भाषावाद

इसके बाद एक और समस्या है हमारे देश की जिसको गहराई से सोचना होगा। इस देश में भाषा की समस्या जरा उलझी हुई है। दूसरे देशों की तरह नहीं है। दूसरे देशों में क्षेत्रनिष्ठ भाषाएँ हैं, यानी वहाँ एक देश की एक ही भाषा है। हमारे यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है कि 'एक देश एक भाषा'। हमारे देश में भाषा का और लिपि का संबंध संप्रदाय के साथ भी है। यहाँ की भाषा केवल क्षेत्रनिष्ठ नही, संप्रदायनिष्ठ भी है। उदाहरण के लिए उर्दू को लें। उर्दू मुसलमानों की भाषा होने का कोई कारण नहीं है। फारसी, अरबी शब्द मुसलमानों के साथ आये होंगे, लिपि उनके साथ आयी होगी; लेकिन इस कारण उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहना गलत है। मालाबार का मुसलमान उर्दू नहीं बोलता। तमिलनाडु के मुसलमान को उर्दू नहीं आती। ईरान, तुर्कस्तान, अफगानिस्तान, वहाँ के मुसलमानों को उर्दू नहीं आती। लेकिन राजनीतिज्ञों में 'महाराष्ट्र में उर्दू के स्कूल नहीं चाहिए' कहने की हिम्मत नहीं है। भाषा में राजनीति को घुसने नहीं देना चाहिए। कल मैं मुसलमान बन जाऊँ तो क्या मेरी भाषा उर्दू हो जाएगी ? स्वयं जिन्ना साहब को भी अंत तक उर्दू नहीं आती थी। भाषा का संप्रदाय के साथ विवाह हमने कर दिया है। परिणाम यह हुआ कि एक-एक भाषा के दो-दो राज्य हो गये। दो बंगाल, दो पंजाब। फिर बचे हुए पंजाब के भी भाषा के नाम पर दो टुकड़े हुए, हरियाणा और पंजाब।

लिपि और भाषा

इस देश में तो यह मजाक है कि लिपि को भी भाषा ही समझते हैं। लिपि को भाषा बना लिया। अगर 'सरदार गृह' रोमन में लिखा हो तो अँग्रेजी हो गया। 'ग्रांड होटल' नागरी में लिखा हो तो हिंदी हो गया। मेरी समझ में नहीं आता कि यह कैसे हो सकता है ! उत्तर में एक बार रोमन अक्षर

हिंदू किसे कहें ?

सन् १९०८ में मोर्लेमिंटो रिफॉर्म आया। मुसलमानों ने अलग निर्वाचन की माँग की। तब दो विभाग हुए। मुस्लिम और गैर-मुस्लिम। माँग हुई कि हिंदुओं का भी अलग निर्वाचन होना चाहिए। प्रश्न आया, हिंदू किसे कहें ? आदिवासियों ने भी कहा अलग निर्वाचन चाहिए। तो हिंदुओं का ऐसा लक्षण चाहिए था जो सभी के लिए लागू हो। सन् १९१० में हिंदू सभा की स्थापना हुई। 'हिंदू' की व्याख्या करने की कोशिश उस वक्त की गयी। लेकिन प्रकाण्ड पंडितों के दीर्घ प्रयत्न के बाद भी 'हिंदू' की व्याख्या नहीं हो सकी। न्यायमूर्ति गुरुदास बॅनर्जी ने कहा, "हिंदुत्व की ऐसी व्याख्या हो ही नहीं सकती जो लीगल (विधियुक्त) भी हो और तर्कशुद्ध भी हो।" चिंतामणि न्या० विनायक वैद्य ने कहा, "जो अपने को हिंदू कहलाता है, वह हिंदू।" सब हरिजनों ने, आदिवासियों ने, बौद्धों ने कहा, हम हिंदू नहीं हैं। इसलिए बाद में सावरकर की व्याख्या आयी, "जिसकी यह भारतवर्ष पुण्य भू और पितृ भू है, वह हिंदू है।" इसमें भी एक दोष रहा। वह हिंदुत्व की परिभाषा ही हो सकती थी लेकिन वह राष्ट्रीयता की परिभाषा नहीं हो सकती है। हिंदुत्व तो राष्ट्रीयत्व है यह प्रतिदावा था। हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व नहीं हो सकता। क्यों कि ईसाई की यह पुण्य भू नहीं है। यहाँ के दूसरे अन्य धर्मियों की भी यह पुण्य भू नहीं है। इस के विपरीत नेपाल के हिंदुओं की यह पितृ भू नहीं है। केवल पुण्य भू ही है। इसलिए हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व नहीं हो सकता।

हिंदुत्व सांप्रदायिक भी नहीं है। इसमें दर्शन की व्यापकता है, विचार का स्वातंत्र्य है। लेकिन इसके तत्वज्ञान में अद्वैत और व्यवहार में विषमता है।

जातिवाद और उसका निराकरण

हिंदुत्व की वास्तविकता क्या है ? कोई ट्रेन में मुझसे पूछता है, आपका नाम क्या है ? मैंने बताया, दादा धर्माधिकारी। लेकिन प्रश्न पूरा नहीं होता है। मुसलमान से पूछा, नाम क्या है ? उसने बताया, सैयद महमूद। सवाल खतम। लेकिन दादा धर्माधिकारी कहने पर खतम नहीं होता। आप कहाँ के हैं ? कौन से मोहल्ले में रहते हैं ? जब तक मेरी जाति नहीं मालूम हो जाय तब तक सवाल पूछते ही रहते हैं। क्यों कि हिंदू कोई चीज नहीं है। कोई ब्राह्मण है, कोई तेली है, कोई भंगी है, कोई माली है। लड़का स्टेशनरी की दूकान में जाता है, चार आने की स्टेशनरी दीजिये। दुकानदार कहता है, स्टेशनरी याने क्या दूं ? रबर चाहिए ? पेन्सिल, इंक—क्या चाहिए ? यहाँ स्टेशनरी नाम की कोई चीज

नहीं है, हिंदू नाम की कोई चीज नहीं है। यहाँ जाति है। मुसलमान समाज में वास्तविकता संप्रदाय है। शिया-सुन्नी होंगे। जैसे हमारे यहाँ वैष्णव और शैव होंगे। वह अलग चीज है लेकिन हिंदु समाज की वास्तविकता जाति, संस्था है।

जाति के लक्षण

जाति के लक्षण क्या हैं ? तीन मुख्य लक्षण हैं। पहला यह कि जाति में कोई आ नहीं सकता। कभी आपने सुना कि कोई तेली बन गया ? कोई माली बन गया ? मुसलमान बन सकता है, ईसाई बन सकता है लेकिन तेली-माली कोई बन नहीं सकता। जाति में किसी को प्रवेश नहीं है। यानी इसमें एंट्रेंस—अंदर आने का दरवाजा नहीं है—सिवाय माँ की कोख के। जन्म, एक ही दरवाजा है जाति में प्रवेश करने के लिए।

जाति का दूसरा लक्षण है, मनुष्य से जो जितना दूर रहेगा वह उतना ही पवित्र समझा जायगा। जो दूसरे के साथ विवाह नहीं करता, एक पवित्र। किसी के साथ भोजन नहीं करता, दूसरा पवित्र। किसी के साथ उठता-बैठता नहीं, छूता नहीं—और पवित्र। और जो किसी को देखता भी नहीं वह तो स्वर्ग ही पहुँच जाता है। जो मनुष्य से जितना परहेज करता है वह उतना अधिक पवित्र माना जाता है, मनुष्य से परहेज ही जिस समाज में पवित्रता की कसौटी है उस समाज में कैसे मानवता का विकास हो सकता है ! इसलिए इस देश में सबसे बड़ी कमी अगर किसी चीज की रही है तो वह मनुष्य के मूल्य की रही है। जन्म का मूल्य रहा, संप्रदाय का मूल्य रहा; लेकिन मनुष्य का मूल्य नहीं रहा। इसलिए मानवीय मूल्यों का विकास यहाँ नहीं हो सका।

तीसरा लक्षण है, इसमें प्रवेशद्वार तो है ही नहीं, लेकिन एक्जिट का दरवाजा—बाहर जाने का दरवाजा है। इसलिए जो जाति में आराम से रह नहीं सके, इज्जत से नहीं रह सके उनको हिंदू समाज छोड़ने के सिवा और कोई चारा ही नहीं रह गया था। अंबेडकर ने हजार कोशिश की लेकिन समाज उनको छोड़ना ही पड़ा। दूसरा रास्ता बचता ही क्या है ? जिस मकान में इज्जत के साथ नहीं रह सकते उसको छोड़ने में ही इज्जत है। जिस जाति की इज्जत नहीं उस जाति का इन्सान क्या करे ? नतीजा यह हुआ कि हिंदू समाज में से निर्यात ही निर्यात होता रहा। इसमें आयात कभी हुआ ही नहीं। इस देश के मुसलमानों की सांप्रदायिकता, ईसाइयों की सांप्रदायिकता, सिखों की सांप्रदायिकता ये सब हिंदू समाज की जातिसंस्था की संतान हैं। जब तक जाति-संस्था रहेगी तब तक संप्रदायवाद का अंत नहीं होगा। जाति-संस्था हिंदू

अनुवाद करते हैं ? कैसे बेहूदा लोग हैं ! लोकमान्य का अपमान कर रहे हैं। यह हमने नहीं कहा।

झगड़ा करना हो तो भी भाषा एक चाहिए। नहीं तो झगड़ा नहीं कर सकेंगे। कैसी अद्‌भुत सृष्टि है भगवान की, कि आलिंगन के बिना कुश्ती भी नहीं हो सकती। किसी अंग्रेज ने किताब लिखी है—द रियल इंडिया। ३९ साल तक रहा इस देश में। वह कहीं यू. पी. में गया होगा किसी गाँव में। वहाँ किसी गंवार किसान ने कहा, यह ससुर आ गया कहाँ का। अब यह पूँछने लगा साथवाले से कि उसने क्या कहा ? साथवाले ने बताया कि यह अपनी पत्नी का पिता आप को कह रहा है। तो वह अंग्रेज यह सुनकर बहुत खुश हुआ कि यह तो इतनी बड़ी हमारी इज्जत कर रहा है। पत्नी का पिता क्या और अपना पिता क्या ! अब दोनों की एक ही भाषा होती तो वह चिढ़ता, खफा होता। समझ लीजिये, मोरारजीभाई को तमिलनाडू के मुख्यमंत्री से बात करनी है। और मुख्यमंत्री कामराज जैसा है, जिसे हिंदी भी नहीं आती अंग्रेजी भी नहीं आती। इन दोनों में जो दुभाषिया होगा वह बेवकूफ हुआ या शोहदा हुआ तो क्या होता ?

पट्टाभिसीतारामैया ने किताब लिखी, 'काँग्रेस का इतिहास'। उसमें एक वाक्य आता है, "दीज ग्रेट लीडर्स वेअर कॅननाइज्ड"। कॅननाइज्ड का मतलब है, देवता बना दिया गया। लेकिन किसी ने अनुवाद किया, 'नेता तोप से उड़ा दिये गये। क्यों कि कॅनन शब्द था उसमें। मैं वह सपना देख रहा हूँ। हमारे इमोशनल नेशनल इंटिग्रेशन का। वह दिन आना चाहिए, जिस दिन इस देश का पढ़ा-लिखा आदमी कम से कम दूसरे के साथ भाषांतर में नहीं बोलेगा। ऐसा फेज्ड प्रोग्राम बनाना होगा। इस देश में दो ही ऐच्छिक माध्यम हैं, एक हिंदी और दूसरा अंग्रेजी। कंपलसरी कुछ भी नहीं। जिनको जो चाहिए वह लिया जायगा। इन दो भाषाओं में से जिसमें सरवायवल की शक्ति होगी वह टिकेगी। मनुष्यों को मिलाना है। भाषा को मनुष्य को तोड़ने मत दीजिये। मनुष्यों को आपस में जोड़ने का नाम संस्कृति है। मनुष्यों को तोड़ने का नाम विकृति है।

राधाकुमुद मुकर्जी ने एक किताब लिखी, द फन्डामैन्टल यूनिटी ऑफ इंडिया। उसमें एक बात लिखी है। वे लिखते है, कि यह ऐसा मजे का देश है कि यहाँ अगर डेमॉक्रेसी आयेगी तो कम्युनल डेमॉक्रेसी आयेगी। जाति और सांप्रदायिक लोकतंत्र जो बिहार में आजकल है—और यहाँ महाराष्ट्र में भी है—ये जितने भाषिक राज्य बने हैं ये सारे जातीय राज्य हैं। सांस्कृतिक क्रांति के लिए संप्रदाय निराकरण, जातिनिराकरण और भाषावाद निराकरण आवश्यक है।

अंत में और बहुत बड़ी आवश्यकता है, स्त्री-पुरुष संबंध के शुद्धीकरण की।

स्त्री-पुरुष-भेद निराकरण

नागरिकता के क्षेत्र में हम स्त्री-पुरुष भेद का निराकरण करना चाहते हैं। हरेक संविधान में, चाहे वह इंग्लैंड का हो, अमेरिका का हो, रूस का हो या चीन का हो, यह प्रतिज्ञा है कि हम स्त्री-पुरुष भेद को नागरिकता के क्षेत्र में नहीं मानेंगे। उधर संविधान में तो प्रतिज्ञा है, कि स्त्री-पुरुष भेद नही मानेंगे और इधर व्यवहार में मैंने आपको कहा कि स्त्री गौण नागरिक हो नहीं, सिर्फ गौण मानव है। वास्तव में उसे मानव माना ही नहीं जाता है, वस्तु माना जाता है।

स्त्री—क्रय...विक्रय की वस्तु

पुराने जमाने में स्त्री की प्रायः एक ही भूमिका हम सदा देखते हैं, कि जब किसी को मोह में डालना हो, या तपस्वी को भ्रष्ट करना हो, तो यह बेचारी आ जाती है। जो पुरुष सब से पराक्रमी हो, उसे देने की वस्तु कौनसी होती थी ? स्त्री। राजा बहुत खुश हुआ तो आधा राज्य दे दिया और अपनी कन्या दे दी। वह खरीदने की चीज थी, वह जीतने की चीज थी, वह चुराने की चीज थी और वह छीनकर ले जाने की चीज थी। इसलिए वह बेचने की भी चीज थी। हम लोगों की अक्सर यह धारणा रही कि स्त्रियों के विषय में प्राचीन आदर्श ऊँचे थे। और बातों में वे रहे होंगे, लेकिन इतना मुझे नम्रतापूर्वक कह देना चाहिए कि स्त्रियों-संबंधी सारे प्राचीन आदर्श स्त्रियों की मनुष्यता की हानि और अपमान करनेवाले थे। इसलिए उन आदर्शों के अनुसार आज का सहनागरिकत्व वाला समाज चल नहीं सकता। किसी धर्म में स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व कभी नहीं रहा। मेरी माँ कोई धार्मिक विधि कभी अकेले नहीं कर सकती। मेरे पिताजी की वह सहधार्मिणी है, अपने में वह मुख्य धर्मिणी नहीं है। पिताजी न हों, तो उसका अपना कोई धर्म नहीं है। पिताजी जो पुण्य करते हैं, उसका आधा पुण्य अपने आप उसे मिल जाता है। वह जो पाप करती है उसका आधा अपने आप पिताजी को लग जाता है। वह जो पुण्य करती है उसका आधा पिताजी को नहीं मिलता और पिताजी जो पाप करते हैं, उसका आधा उसको नहीं लगता। यह मर्यादा है। क्यों कि वह 'रक्षित' है और पिताजी 'रक्षक' हैं। स्त्री पालित है, पुरुष पालक। इसलिए मुख्य धर्म, मुख्य कर्तव्य पुरुष का है, स्त्री केवल सहधर्मिणी है। वह सह-जीविनी है, उसका अपना जीवन नहीं है। जैनों और बौद्धों के कुछ प्रयासों को हम छोड़ दें तो आज तक की जो परंपरा और समाज-स्थिति है, उसमें स्त्री की भूमिका गौण और दोयम रही है। समाज ने उसे कभी व्यक्ति माना ही नहीं है। इस-

मिटाये गये थे। दादा धर्माधिकारी रोमन में लिखा हो तो वह अँग्रेजी हो गया। मिटा दो। इस आंदोलन में कौन थे अगुआ---कॉलेज के विद्यार्थी और प्रोफेसर। सब पढ़े-लिखे लोग। दया आती है इनके दिमाग पर मुझको। यह भी उनके ध्यान में नहीं आया, कि नागालैंड और मेघालय आदि की लिपि रोमन में है। वे अपनी भाषा रोमन लिपि में लिखते हैं। उर्दू इस देश की लिपि है तो क्या कारण है कि रोमन ही इस देश की लिपि नहीं है ? भाषा अलग है और लिपि अलग है। विनोबा ने एक बात चलायी। रहने दो अलग-अलग भाषाएँ और बोलियाँ; लेकिन कम से कम एक लिपि तो करो। जिसमें 'सत्यमेव जयते' लिखा हो अगर तो उसे पढ़ सकें सब लोग। जब मैं चण्डीगढ़ से भाखरा नांगल गया तो मील का पत्थर भी नहीं पढ़ सकता था और नाम की तख्ती भी नहीं पढ़ सकता था। मेरा अपना नाम भी कहीं लिखा होता तब भी पढ़ नहीं सकता था। मैं तो वहाँ महानिरक्षर हो गया था।

भाषिक राज्य-दुर्घटना

इस देश में दो दुर्घटनाएँ हुईं। पहली दुर्घटना है, पाकिस्तान और दूसरी है, भाषिक राज्य। महाराष्ट्र में सिर्फ मराठी बोलनेवाले रहेंगे। तमिलनाडु में सिर्फ तमिल बोलनेवाले। असम में सिर्फ असमिया बोलने वाले। पूर्व प्राथमिक से लेकर एम. ए. तक सारा शिक्षण मातृभाषा में पाये हुए भिन्न प्रांतीय सज्जन कर्म-धर्म संयोग से यदि रेलगाड़ी में मिल जायँ तो इशारों के सिवा दूसरी भाषा के लिए गुंजाईश ही नहीं है। याने ये सब आंदोलन इसलिए चलते हैं, कि हम एक दूसरे के साथ न रहने पायें। यही इनका अनभिव्यक्त उद्देश्य है।

भाषा का संबंध बोलनेवालों की संस्था से नहीं, भाषा की व्यापकता से होना चाहिए। व्यापक भाषा का अर्थ है, वह भाषा जिसे भिन्न भाषिक आपस में बोलते हैं। जिस भाषा में ट्रान्सलेशन के बिना लोग आपस में बोल सकते हैं वह भाषा व्यापक है। इस संदर्भ में आपसे एक बात कहनेवाला हूँ, उसको मानने में आपको दिक्कत होगी। लेकिन अध्ययन करता हूँ इसलिए कह देता हूँ। मैं कहता आया हूँ कि मनुष्य की कोई मातृभाषा नहीं होती। बगैर सीखे मनुष्य को कोई भाषा नहीं आती। पशु को आती है भाषा। जन्म से ही वह रेंकने लगता है, हिनहिनाने लगता है। भोंकने लगता है। यह पशु ही कर सकता है। मनुष्य को 'माँ' कहना भी सीखना ही पड़ता है, 'ताई' कहना भी सीखना पड़ता है और 'मम्मी' कहना भी सीखना पड़ता है। अब मुझे बतलाइये, महादेव देसाई का लड़का नारायण देसाई। नारायण की सास है बंगाली और ससुर उडिया। इन दोनों की बेटी उसकी पत्नी है। अब नारायण के बच्चों की

कौनसी मातृभाषा है ! नारायण की लड़की ने शादी की है महाराष्ट्रियन ब्राह्मण से । तो मातृभाषा भी उसे सीखना होती है । दूसरी भाषाएँ भी वह सीख सकता है । और मनुष्य की भाषा की यह विशेषता है कि उसका भाषांतर हो सकता है । पशु की भाषा का भाषांतर नहीं हो सकता । हिनहिनाने का भोंकने में भाषांतर नहीं हो सकता । मनुष्य कई भाषाएँ सीख सकता है । जितनी ज्यादा भाषाएँ सीखता है उतना वह महान समझा जाता है । विनोबा बीस भाषाएँ जानते हैं, बड़े भाषा-पंडित हैं । कोई किताब अनेक भाषाओं में अनुवादित होती है तो उस लेखक का गौरव माना जाता है । भाषा परिस्थिति में से पैदा होती है ।

हमें भाषिक आग्रह छोड़ना होगा । किसी भाषा का आग्रह करने से दूसरे भाषा-भाषिकों में प्रतिक्रिया होती है ।—यू मेक युअर अपोनेंट लेंग्वेज कांसस । लेकिन हिंदी इस देश की व्यापक भाषा है । ऐसी भाषा, जिसको बहुत लोग बोलते हैं । वह राष्ट्रभाषा हो सकती है ।

राष्ट्र भाषा की कसौटियाँ

भाषा के बारे में तीन चीजें देखनी चाहिए । एक तो वह यहाँ की हो, इस देश की । दूसरी, वह स्वाभाविक हो, स्पांटेनियस । भिन्न-भिन्न भाषिक जब मिलते हों, तो आपस में जिस भाषा में बोलने की कोशिश करते हों ऐसी भाषा । तीसरी चीज, वह किसी की भाषा हो । आसमान की न हो । ये तीनों कसौटियाँ किसी के लिए लागू होती हैं और खरी उतरती हैं तो हिंदी के लिए । लेकिन इसके लिए किसी का आग्रह न हो । पहले अंग्रेजी भाषा इस देश के भिन्न भाषिकों के लिए सामान्य भाषा बनी । जैसे पंडितों के लिए संस्कृत थी, बाबूओं के लिए अंग्रेजी बनी । इसलिए अंग्रेजी भाषा की भूमिका हिंदी की भूमिका से ज्यादा व्यापक रही । भाषा अपनी और परायी नहीं होती । भाषा अपने लिए होती ही नहीं है । अपनी पोशाक, अपनी सूरत और अपनी भाषा अपने लिए नहीं होती । अपनी सूरत मनुष्य आइने में देखता है तो इसलिए देखता है, कि दूसरों को वह कैसी लगेगी । भाषा भी दूसरे के लिए है । आश्चर्य की बात यह है, कि हमारे यहाँ सैन्सस में—गणना में एक भाषा ऐसी पायी गयी है, जिसको बोलनेवाला एक ही आदमी है । वह किस तरह से बोलता होगा ! अपने से बोलता होगा तो पागल ही समझा जायगा । भाषिक संकीर्णता में भाषा का अभिमान नहीं बल्कि असंस्कृति है । भाषा से मनुष्य बड़ा है । मुझे दूसरे से बोलना है । इसलिए गीता रहस्य का अनुवाद हुआ तो मुझे बड़ा अभिमान हुआ कि इतनी अधिक भाषाओं में हो गया । असल में शिकायत होनी चाहिए थी कि तिलक ने तो अभिमान से इसे मराठी में लिखा और ये लोग अब उसका

लिए ब्रह्मचर्य उसका मुख्य धर्म कभी माना नहीं गया।

ब्रह्मचर्य का सामाजिक अर्थ

ब्रह्मचर्य का सामाजिक अर्थ क्या है! स्त्री का शरीर पुरुष के आक्रमण का विषय न हो और स्त्री पुरुष से डरे नहीं। पुरुष आक्रमण-शील न रहे और स्त्री रक्षणाकांक्षिणी न रहे। यह सामाजिक क्षेत्र में ब्रह्मचर्य कहलाता है।

सहजीवन और सह नागरिकत्व

स्त्री रक्षणाकांक्षिणी रहेगी, तो उसे नागरिक नहीं बनना चाहिए। उसे तब नागरिक नहीं बनने देना चाहिए। फिर वह सिर्फ कुटुंबिनी रहे। कुटुंब के संदर्भ में उसकी तीन हैसियतें हो सकती हैं। वह या तो मां, बहन, कन्या रहे या फिर दूसरे कुटुंब में पत्नी के नाते दाखिल हो जाय। रक्त-संबंध या यौन-संबंध ये दो ही पर्याय उसके लिए रह जायेंगे।

लेकिन, जहाँ रक्त-संबंध भी नहीं होगा और यौन-संबंध भी नहीं है वहाँ स्त्री पुरुषों का संबंध नागरिकत्व का रहेगा। इसे मैंने 'सहनागरिकत्व' कहा है। इसका विचार केवल कम्युनिज्म में हुआ। आज उनका विचार यहाँ तक पहुँचा है, कि स्त्री की कौटुंबिक भूमिका में और उसके नागरिकत्व में अंतर नहीं होना चाहिए। शुरू में उन लोगों ने कुटुंब-संस्था का विरोध इसलिए किया कि कुटुंब-संस्था में स्त्री दासी थी। पर आज वे कहते हैं, कि समाज की प्रगति चक्करदार, पेंचदार सीढ़ी की तरह होती है और क्रांति के बाद आज की कुटुंब व्यवस्था पहले से ऊँचे स्तर की है।

स्त्री के नागरिक बन जाने के बाद कुटुंब रचना में मातृत्व का आशय बदल जाता है। भगिनीत्व का और कन्यात्व का आशय बदल जाता है। यदि हम स्त्री के नागरिकत्व को चरितार्थ करना चाहते हैं, तो समाज में और आर्थिक क्षेत्र में उसकी भूमिका बदलनी होगी। आज नीति के दो मानदंड हैं। पुरुष के लिए एक और स्त्री के लिए दूसरा।

एक स्त्री सती हुई। आप कहते हैं, कितना त्याग है, कितना बलिदान है। यह बहुत बड़ा आदर्श है, मैं मानता हूँ। लेकिन एक पुरुष अपनी स्त्री के साथ चिता पर जल मरता है। आप कहेंगे, लम्पट है। ऐसा मूर्ख पुरुष जो सिर्फ स्त्री के लिए मरता है। पुरुष निष्ठ स्त्री 'पतिव्रता' कहलाती है, स्त्रीनिष्ठ पुरुष 'लम्पट' कहलाता है। कितना भयानक है यह पैमाना।

स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य

स्त्रियाँ मुझसे कहती हैं कि पुरुष की अपेक्षा स्त्रियां अधिक नैतिक हैं। अधिक नैतिकता का मतलब यह तो नहीं कि अधिक संयमी हैं, अधिक ब्रह्मचर्यनिष्ठ हैं। ब्रह्मचर्य का तो उनके लिए निषेध है। वृद्ध कुमारिका 'वृषला' कहलाती है। कोई भी नेता लड़कियों के स्कूल में जाकर कहता है, तुम वीर माता बनो। शिवाजी की माता बनो, गांधी की माता बनो। पर लड़कों के कालेज में जाकर कोई यह नहीं कहता कि तुम वीर पिता बनो। इसलिए नहीं कहा जायगा, कि पुरुष का व्यक्तित्व स्वतंत्र और स्वायत्त है; स्त्री का वैसा नहीं है। ऐसा विरोध रहते हुए लोकसत्ता कैसे चरितार्थ हो सकती है। मुझे एक प्रसंग याद आता है. एक दफा आशा देवी आर्यनायकम् ने भाषण में कहा कि मातृत्व के बिना स्त्री का जीवन सार्थक नहीं है। प्रेमाबाई कंटक वहाँ थी। खड़ी हो गयी, कि 'तब तो मेरी जिंदगी फिजूल गयी। विनोबा पिता नहीं बने तो धन्य हो गये और मैं माता नहीं बनी तो कोसी जाती हूँ।' मातृत्व की अनिवार्यता स्त्रीजीवन से समाप्त होनी चाहिए। मातृत्व गौरीशंकर है संस्कृति का। पितृत्व भी गौरीशंकर है; लेकिन पुरुष के लिए पितृत्व अनिवार्य नहीं है। स्त्री के लिए भी मातृत्व अनिवार्य नहीं रहेगा तब वह मनुष्य बनेगी।

स्त्री को डर छोड़ना चाहिए

सामाजिक ब्रह्मचर्य का मतलब है, पुरुष आक्रमण नहीं करेगा और स्त्री डरेगी नहीं। आज तो एन. सी. सी. की लड़की एन. सी. सी. के लड़के से डरती है। स्त्री पुलिस, पुरुष पुलिस से डरती है। यह स्त्री जीवन का अंतिम प्रश्न है। उनको इस ट्रेंच में खास लड़ाई लड़नी होगी अपने लिए।

दुनिया मनुष्य का मकबरा न बने

ये कुछ आयाम क्रांति के मैंने आपके सामने रखे हैं। जब तक ये जीवन में नहीं आयेंगे विज्ञान मनुष्य को जीवित नहीं रखेगा।

एक दफा मैं आगरा गया। एच०व्ही० कामथ और मैं, दोनों नागपुर से दिल्ली मोटर से जा रहे थे। आगरे में रुके तब ड्राइवर पूछने लगा कि यहाँ क्या है? मैंने कहा, चल दिखाता हूँ तुझे। ले गया उसको, ताजमहल दिखाया। बड़े गौर से देखा उसने। इधर से देखा, उधर से देखा। पूछने लगा, यह क्या है? दुनिया में सबसे खूबसूरत इमारत है, लेकिन यह है क्या? यहाँ रहता कौन है! अब उसने ऐसा सवाल पूछा जो मैंने कभी नहीं पढ़ा था, सुना नहीं

था। लेकिन बहुत स्वाभाविक था उसका सवाल। मैंने कहा, यहाँ कोई नहीं रहता। उसने कहा, तो फिर क्या यह अस्पताल है। मैंने कहा, नहीं, अस्पताल नहीं है। तो स्कूल है? स्कूल भी नहीं। धर्मशाला है? धर्मशाला भी नहीं है। फिर आखिर है क्या? मैंने कहा, एक कब्र है। एक राजा की और एक रानी की कब्र है। वह कहने लगा, हाय राम! आप मुझे सवेरे-सवेरे मरघट पर ले आये। पढ़े लिखे लोगों को इन लोगों से सीखना चाहिए। उनमें एक अशिक्षित पटुत्व-अनलैटर्ड विज़डम होता है। उस ड्राइवर ने मुझे जैसे धक्का दे दिया। उसके सवाल से मैं जान गया कि विज्ञान ने इस दुनिया को संपन्न कर दिया दिया है, सुशोभित कर दिया है। कितने मकान, कितना सामान! कैसी सुंदर सड़कें, कैसी सुंदर नहरें हैं। लेकिन यह सुंदर दुनिया मनुष्य का एक दिन मकबरा बनने वाली है। मनुष्य की समाधि बननेवाली है।

वेदान्त–विज्ञान–विश्वास

इसको अगर समाधि बनने से रोकना है विनोबा ने तीन बातें कहीं हैं—वेदांत विज्ञान और विश्वास। विज्ञान के एक तरफ वेदान्त और दूसरी तरफ विश्वास। वेदान्त से मतलब है मानवता। विज्ञान के साथ ये दोनों चीजें चाहिए। आज स्त्री-पुरुष, काले-गोरे और ऊँच-नीच के बीच डर हैं। गरीब-अमीर में डर है। इसके बदले इनमें आपस में विश्वास होना चाहिए। लेकिन यह कब होगा? गांधी ने कहा था, मेरे राज्य में राजा और रंक समान होंगे। लोगों ने समझा, अच्छी बात है। राजा राजा रहेगा, रंक रंक रहेगा और दोनों समान रहेंगे। एक सरकस में मैंने देखा था शेर और बकरी पानी पी रहे थे एक बर्तन में। यह १९१० का जमाना था। मैं छोटा था। और अपने चाचा के साथ गया था। वहाँ शेर और बकरी के बीच तख्ती टंगी थी, जिसमें लिखा था, 'ब्रिटिश रूल'। मैंने पूछा, यह ब्रिटिश रूल क्यों लिखा गया है? चाचा ने कहा, यह अंग्रेजी राज में ही हो रहा है। इससे पहले तो कभी रामराज्य में भी शायद ही ऐसा होता हो। अब इसे हम ब्रिटिश राज में देख रहे हैं कि शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पी रहे हैं।' मैंने कहा, यह झूठ लिखा है। इसमें अंग्रेजी राज नहीं, रिंग मास्टर का राज है। रामराज या अंग्रेजी राज तब होता जब शेर की क्रूरता और बकरी की कायरता काफूर हो जाती। राजा का राजापन और रंक की कंगालियत जब समाज में से समाप्त हो जायेंगे उस समय उनका रुतबा समान होगा। तब वे समानता पर, एक सतह पर, एक धरातल पर आयेंगे। गाँधी का दिमाग सही दिमाग था। उसने राजा और रंक शब्दों का उल्लेख किया उस समय की परिस्थिति में। गरीब की गरीबी, अमीर की अमीरी,

ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व, भंगी का भंगीपन, हिंदू का हिंदूत्व, मुस्लिम की इस्लामियत इन सबका निराकरण होगा तब खालिस इन्सान इन्सान से मिलेगा और वह संपूर्ण और समग्र क्रांति होगी। तब उस क्रांति में से कोई प्रतिक्रांति नहीं होगी।

पूछा जाता है, कि क्या कभी कोई यहाँ पहुँचेगा ? एलिस इन वंडरलैंड, किताब में वह जो रेड क्वीन है, वह एलिस से कहती है, "यू सी हेयर, इट हैज टेकन आल दी रनिंग यू कैन डु टू कीप इन द सेम प्लेस। एण्ड इफ यू, वान्ट टु गैट समवन एल्स यू विल हैव टु रन एट लीस्ट ट्वाइस एज मच एज दैट।"—तू जिस मुकाम पर है, वहाँ रहने के लिये तुझे इतनी दौड़-धूप करनी पड़ी है। तूने अभी देखा। अब अगर थोड़ा सा भी आगे जाना चाहती है, तो कम से कम इससे दूनी गति, दूनी रफ्तार से तुझे दौड़ना होगा।

दौड़ना पड़ेगा, आरंभ करना पड़ेगा। मुट्ठी-भर लोग होंगे, असफल होंगे। उस असफलता में भी बहुत बड़ा गौरव है। मिल ने कहा था, इट इज बैटर टु बी ए मैन डिससैटिस्फाइड दैन ए पिग सैटिस्फाइड, ए प्रोफ़ेट डिससैटिस्फाइड दैन ए फूल सैटिस्फाइड, एण्ड इफ ए फूल थिंक्स अदरवाइज, इट इज बिकाज ही नोज ओनली हिज साइड आफ दी केस—बेवकूफ अगर यह समझता है, संतुष्ट बेवकूफ रहने में ही सुख है, असंतुष्ट मानव रहने में दुःख है, तो क्रांति का मूल्य वह नहीं जानता है।

आत्मवान पुरुष

टेरेन्स मैकस्विनी छहत्तर दिन का उपवास करके मरने लगा तो उसने कुछ वाक्य कहे थे, जो अब तक कानों में गूँजते हैं—वन आर्मड मैन कैन बी कॉकर्ड बाई टू, टू वाई ट्वैन्टी, ट्वैन्टी बाई टू हन्ड्रेड, टू हन्ड्रेड बाई एन आर्मी, एन आर्मी वाई काउन्टलैस लीजियन; बट नाट ऑल दी आर्मीज ऑफ ऑल एम्पायर्स ऑफ द वर्ल्ड कैन क्रश दी स्पिरिट आफ ए ट्रू मैन—एक सशस्त्र सैनिक दो सैनिकों से जीता जा सकता है, बीस से दो जीते जा सकते हैं। दो सौ को एक टुकड़ी जीत सकती है, और एक बड़ी सेना टुकड़ी को हरा सकती है। लेकिन दुनिया के सारे साम्राज्यों की सारी सेनाएँ मिलकर भी एक आत्मवान पुरुष को पराभूत नहीं कर सकतीं।

पांच

गांधी और तरुण
गांधी-सत्यनिष्ठ
शुद्ध बुद्धि का अर्थ
समस्या जागतिक
तरुण-भेद पहलू
दूसरा प्रकार
तीसरा प्रकार
गांधी से समानता
क्या-क्या की भविष्यवाणी
क्रांति अपनी-अपनी
गांधी के तीन नये आयाम

गाँधी और तरुण

गांधी-सत्यनिष्ठ

इतना प्रारंभ में ही स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं यहाँ जो कुछ कहने जा रहा हूँ वह गांधी विचार के विषय में न होकर गांधी के बारे में ही होगा। कारण बाद में स्पष्ट करूँगा।

गांधी शताब्दी वर्ष में मैं तीन सप्ताह तक महाराष्ट्र के तरुणों को देखने-समझने के विचार से एक तरह की तीर्थयात्रा करता हुआ घूम रहा था। महाराष्ट्र के तरुणों से मिलने-जुलने उनकी आकांक्षाओं को समझने और अन्त में परिस्थिति का विश्लेषण करके कुछ निष्कर्ष निकालने के बाद मैं उन्हें किसी प्रकार के कार्यक्रम की बात सुझाया करता था। तीन सप्ताहों के इस क्रम में लगभग तीस भाषण मैंने दिये। अन्तिम भाषण में जो कुछ कहा सो लगभग इस प्रकार है।

मैंने कहा कि मैं गांधीजी के तत्वज्ञान के बारे में बोल नहीं सकता, बोलना चाहता भी नहीं हूँ। उसका कारण यह है कि गांधी-सम्बन्धी मेरा अध्ययन जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे मन में यह विचार भी पक्का होता गया कि गांधी का कोई निश्चित तत्वज्ञान था नहीं। गांधी कोई तत्वज्ञ, दार्शनिक या विचारक भी नहीं था। वह था सत्यनिष्ठ। जो सत्यनिष्ठ होता है वह तत्वनिष्ठ बन नहीं सकता, विचारनिष्ठ बन नहीं सकता। उसे तो सत्य की खोज करनी होती है। सत्य का आकलन, सत्य का दर्शन हरेक व्यक्ति की अपनी-अपनी संस्कृति और बुद्धि की सीमा के अनुपात में होता है। उसी के आधार पर वह कुछ निष्कर्षों पर पहुँचता और कुछ सिद्धांत निश्चित करता

है। हम उन निष्कर्षों को तत्वज्ञान कहने लगते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि तत्वज्ञान अनेक हो सकते हैं, तथापि सत्य अनेक नहीं हो सकते। सत्य जहाँ अनेक हुए कि वे असत्य बन जाते हैं। अलबत्ता तत्वज्ञान का प्रचार हो सकता है। किसी एक ने कहा है 'फिलॉसफी इज ए रूट ऑन मेनी रोड्स लीडिंग फ्रॉम नोव्हेअर टु नथिंग'। इसलिए एक तत्वज्ञान या दर्शन विचार दूसरे दार्शनिक विचार के विरोध में खड़ा हो जाता है और उनमें संघर्ष चलता है। जब वह विचार अथवा दर्शन संगठित हो जाता है तब वह एक सम्प्रदाय में बदल जाता है और जब यह सम्प्रदाय आक्रमणशील बन जाता है तब हम उसे 'वाद' कहने लगते हैं। जब यही तत्वज्ञान या वाद संगठित होकर सत्तारूढ़ होता है तब उसे पक्ष कहने लगते हैं। सच कहें तो संगठित विचार अर्थात, कुण्ठित गुँथा-गुँथाया विचार, ऐसा विचार जिसका प्रवाह नष्ट हो गया है जिसमें से ज़िन्दगी या जीवन्तता लगभग समाप्त हो गयी है। इसलिए जो सत्यनिष्ठ होगा वह तत्वनिष्ठ या तत्वज्ञाननिष्ठ हो ही नहीं सकता। कदाचित इसीलिए गांधी के मित्र पोलक ने उनके सम्बन्ध में कहा है—'हिज इज एन इल्यूसिव परसनैलिटी' अर्थात इस व्यक्ति के भीतर जो विभूति है वह चंचल है। इस क्षण वह यहाँ है, किन्तु जब हम उसे छूने जाते हैं तो देखते हैं कि वह विभूति सत्य का शोध करने के विचार से कहीं और निकल चुकी है, वह हाथ नहीं लगती। उसे मुट्ठी में पकड़ना मुश्किल है। इसलिए मैं कहा करता हूँ कि गांधी, मार्क्स, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, नानक इनमें से किसी के भी विचारों के संस्कार यदि मन में हों तो गांधी के विषय में अध्ययन करते हुए हम इन सब संस्कारों को थोड़ी देर के लिए एक तरफ रख दें। यों तो ये सब चश्मे हैं, चश्मों का नम्बर होता है, वह वस्तु को जैसा का तैसा नहीं दिखाता। वस्तु दर्शन के आड़े आता है। सम्प्रदाय, नेता, संस्था, संगठन, देव-स्थान, मन्दिर में सारी वस्तुएँ मनुष्य के सत्य-दर्शन के आड़े आने वाली चीज़ें हैं। इसलिए इन सबसे ऊपर उठकर शुद्ध बुद्धि से समस्याओं का अध्ययन करना चाहिए।

शुद्ध बुद्धि का अर्थ

शुद्ध बुद्धि का अर्थ 'अनकारमेमिटेड इन्टैलेक्ट' किसी भी दर्शन से खण्डित या चरवित बुद्धि नहीं, तटस्थ बुद्धि! तटस्थ बुद्धि का अर्थ जड़ या उदासीन बुद्धि नहीं है, बल्कि अनासक्त और नम्र बुद्धि है, डिटैच्ड है। अनासक्त तटस्थ या डिटैच्ड होने के कारण भी उसमें नम्रता है, विनय है। जब तक बुद्धि में ऐसा विनय नहीं आता तब तक सत्य का दर्शन नहीं होता। मैं गांधी

के विचार का प्रचार नहीं करना चाहता, वह गांधी का अपमान होगा। मैं तो यही कहना चाहूँगा कि कोई भी एक आदमी दूसरे आदमी के विचार का प्रचार न करे। यह तो एक प्रकार की सेल्समैनशिप हुई। विचार अपौरुषेय होता है। इसका या उसका नहीं होता। यदि इसका या उसका है तो फिर वह किसी का भी नहीं है। या जिसका है उसका है और इसलिए किसी का नहीं है या फिर अनासक्त बुद्धि से देखें तो सबका है। हमें आज की समस्याओं पर विचार करने में यदि गांधी इस तरह उपयुक्त लगें तो यह बहुत बड़ी बात होगी।

समस्या जागतिक

आज की समस्या जागतिक समस्या है। हमारे प्रश्न विश्व-प्रश्न बन गये हैं। तरुणों का सवाल भी राष्ट्रीय या स्थानीय नहीं रहा। सारे के सारे प्रश्न जागतिक हो गये हैं। ये कैसे हो गये हैं, इसका क्या प्रमाण है इस विषय में इतिहास क्या कहता है—इन सारी बातों को यहाँ नहीं उठाना है, केवल इतना ही कहना है कि ये सारे प्रश्न विश्व-प्रश्न हैं। इसलिए इनका अध्ययन करने के लिए हमारी दृष्टि भी, बुद्धि या दृष्टि भी विश्वव्यापी होनी चाहिए। हमारी भूमिका विश्व भूमिका होनी चाहिए, मानवीय होनी चाहिए।

हम दो घटनाओं को ले लें। एक मनुष्य का चन्द्र आदि दूसरे नक्षत्रों में प्रवेश—यह इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ यह हमारे लिए गौरव की बात है। ऐसा समझिए कि मनुष्य ने जमीन और आसमान का फ़र्क़ समाप्त कर दिया। सचमुच में यह एक ऐसी घटना है कि मानवात्मा विश्वात्मा बन कर हर्ष निर्भर हो जाये, तथापि मानना पड़ेगा कि मनुष्य के मन और विज्ञान का अन्तर इन सबके बावजूद समाप्त नहीं हुआ। विज्ञान जितना विकसित हो रहा है कई बार तो शंका होती है कि संस्कृति उतनी पीछे हटती जा रही है। जैसे जो आदमी चन्द्र पर गया उसके मन में मनुष्य होने का अभिमान तो पैदा हुआ किन्तु उसने वहाँ जो झंडा गाड़ा वह अमरीका का था, आदमियत का नहीं। वह अपना लेबिल अपनी चिप्पी वहाँ भूल नहीं सका कि मैं अमरीकी हूँ। रूसी नहीं हूँ चीनी नहीं हूँ, यह नहीं भूल सका और फिर उसने कहा क्या? उसने कहा कि मैं यहाँ शान्ति की खोज के लिए आया हूँ। जहाँ देखो वहाँ ऐसी ही मज़ेदार बातें कही जाती हैं। एक देश का राष्ट्रपति दूसरे देश में जाता है शान्ति की खोज के लिए। एक बार दो शान्ति सैनिक परस्पर बातचीत कर रहे थे। एक ने दूसरे से पूछा कि क्या फिर युद्ध हो सकता है? दूसरे ने कहा कि नहीं युद्ध तो नहीं होगा किन्तु शांति के लिए ऐसा संघर्ष

होगा कि कहीं कोई कसर बाकी नहीं रखी जायेगी । अर्थात शांति के लिए ऐसी मार-धाड़ होगी कि सारी सड़कें लाशों से पट जायेंगी । हमारी जागतिक समस्या का एक पहलू यह भी है ।

तरुण भेद पहला

दूसरा पहलू युवकों से सम्बन्धित है । युवक विद्रोही हो गये हैं किसी की सुनते नहीं हैं । जब मैं युवकों की बात करता हूँ तो उसका मतलब युवक ही समझिए । मैं युवतियों को इसमें शामिल नहीं करता क्योंकि उनकी समस्या तो एक ही है—विवाह की समस्या । सारे संसार में क्रान्तिकारी देशों में भी इसके सिवाय उनकी दूसरी समस्या नहीं है । १९६८ में युवक विद्रोह का विस्फोट हुआ और उसका नाम दिया गया १९६८ का फ्रेंच रेवोल्यूशन । उस विद्रोह के प्रवर्तकों और नेताओं ने उसका विवेचन किया है, अपना मैनेफेस्टो प्रकाशित किया है इन अशांत प्रक्षुब्ध, अस्वस्थ, उच्छृंखल युवकों के तीन वर्ग कहे गए । पहला वर्ग कार्नर वॉय सबकल्चर अर्थात् क्रुद्ध तरुण । ऐसा तरुण जो एक कोने में जाकर बैठ गया है जो अपने मन की बात किसी से नहीं कहता और दूसरे के मन की बात जानने की भी जिसे कोई इच्छा नहीं है । एक आकांक्षा उसकी है कि आज जो समाज प्रतिष्ठित है उसमें उसे उपयुक्त स्थान मिले । अब यह तरुण कोई क्रान्तिकारी तरुण नहीं है । समाज बदलने की उसकी कोई इच्छा नहीं है । वह इतना ही चाहता है कि समाज जैसा है वैसा रहे किन्तु उसमें उसे मान-सम्मान प्रतिष्ठा प्राप्त हो । इन तरुणों ने दीक्षान्त भाषण के समय कहा हमें सर्टीफिकेट नहीं चाहिए 'बी वान्ट जाब्स' । यह पहले प्रकार का तरुण हुआ ।

दूसरा प्रकार

दूसरे प्रकार के तरुण को ड्राप आउट्स कहा गया । इनके हिप्पीज, बीटनिक्स आदि अनेक नाम हैं । वे समाज से अलग-थलग हो जाना चाहते हैं । एक प्रकार का पलायनवाद । वे कहते हैं कि किसी भी समाज के वे सदस्य नहीं हैं । उन्हें कोई समाज नहीं चाहिए काम नहीं चाहिए । वे काम करते नहीं हैं और न काम करने की इच्छा रखते हैं । 'आई हेट आल प्रॉडक्शन' उत्पादक श्रममात्र के प्रति उन्हें घृणा है । अगर उनसे कोई कहे कि तब तू करता क्या है तो वह कहेगा कि मैं सिर्फ़ जीता हूँ । जीना दुनियां की सबसे अच्छी चीज है । और यही मैं करता हूँ । और अगर पूछो कि जीने के लिए करते क्या हो तो वे बतायेंगे कि एल० एस० डी० खाता हूँ, भाँग खाता हूँ, गाँजा पीता

हूं और इन्हीं के सुधरे हुए संस्करण मारिजुआना आदि लेता हूं या सोने की गोलियाँ खाता हूँ। ये टोकियो में हैं और अब तो सब जगह हैं। रास्तों पर चाहे जहाँ ये लड़कियों के साथ दिखाई देते हैं, रहते हैं और एक ब्रेक-अप नाम का शब्द है उसके अनुसार जीते हैं। प्यार करना कराना लड़कियों का काम नहीं है, ऐसा मैंने कहा। ये जो हिप्पी लोग हैं इनमें से बहुत से ऐसे हैं जिनको नशे की चीजें गोलियाँ आदि रोज का भोजन उस क्षण जो लड़की उनके साथ है, दे देती है वह किसी भी व्यक्ति का मन बहला कर थोड़े से पैसे ले आती है और वह पैसे इस तरह के आदमी को खाने के लिए दे देती है और उसका नशा पानी करा देती है। यह है उनका जीवन। हेनरी मिलर नाम का एक आदमी था। वह इनका पुरोहित जान द बैप्टिस्ट, लिटररी फादर अर्थात यह एक प्रकार के साहित्यकों का सम्प्रदाय है। इसके बाद हेमिंग्वे, विलियम फॉक्लेंड, लेडी चटरलीज लव्हर के लेखक डी० एच० लॉरेन्स इन सबको आप इसी सम्प्रदाय में कह सकते हैं। यह सम्प्रदाय 'एग्जिस्टेनशिआलिस्ट्स'—अस्तित्ववादियों में से शुरू हुआ है। हेनरी मिलर का कहना है कि मनुष्य के अवचेतन के सारे क्षेत्रों में एक आमूलाग्र क्रान्ति होनी चाहिए और बीटनिक्स कहते हैं कि हम कोई पलायनवादी नहीं हैं, हम एक खोज में लगे हैं आदमी कोई प्रॉडक्ट नहीं है केवल सोशल एनीमल नहीं है वह मूल में स्पिरिट है। 'एट वाटम ही इज ए स्पिरिट।' उसके मूल में जो आत्मा है, हम उसी को खोजने के लिए निकले हैं। यह हुआ दूसरा प्रकार।

तीसरा प्रकार

तीसरे क्रान्तिकारी सम्प्रदाय को स्ट्रीट-कार्नर सब-कल्चर कहते हैं। यानी उनका कहना यह है कि जो कुछ भी हो खुलेआम रास्ते पर हो। सारे आन्दोलन संस्था, संगठन, पक्ष, यूनियन एक प्रकार की आवारागर्दी में हों। इन्हें किसी दायरे में बन्द करके नहीं रहना है। घिरे-घिराये आन्दोलन का कोई अर्थ नहीं। मार्क्सिस्ट्स कम्यूनिस्ट्स लेफ्टिस्टस और एक्ट्रीम लैफ्टिस्ट्स इनके आन्दोलन भी अब घेरों में से बाहर आ गए हैं। क्रान्ति तो चाहिए किन्तु अब क्रान्ति पक्षनिष्ठ नहीं होगी लोकनिष्ठ होगी। हमें जड़मूल से क्रान्ति चाहिए। आज का समाज आदमी के रहने लायक नहीं बचा। हमने समाज के प्रत्येक मूल्य से इंकार कर दिया है। हम इस समाज में रहने से इंकार करते हैं। इसमें नहीं रहेंगे। पुराने को जड़ से खोदना है और नये को एकदम नींव खोदकर बनाना है। उन की प्रतिज्ञा है कि आज के समाज को नष्ट करके रहेंगे। इसलिए आज मजदूर आंदोलन यूनियन के घेरे में न रहकर रास्तों पर होने चाहिए, विद्यार्थियों के

आन्दोलन भी यूनियन-बद्ध न हों, किसी पक्ष के नाम का तो सवाल ही नहीं उठता। आज के मूल्यों के विरोध में आन्दोलन रास्तों पर, चौरास्तों पर, गलियों में और बाजारों में हों और इनको लोकनिष्ठ रहना है। अब इस विचार का पैगम्बर कौन है ? शिनकारा नाम का एक आदमी है। क्यूबा में यह कॉस्ट्रो के साथ क्रान्ति में शामिल था। दूसरा एक व्यक्ति हो चिमिन्ह वियतनाम का और तीसरा डेनिअॅल फ्रॅनविण्डिकिट जिसने १९६८ में फ्रांस की उस क्रान्ति का झंडा फहराया था जिसकी हमने अभी-अभी बात की। इन सब लोगों ने अपनी-अपनी क्रान्ति के विश्लेषण प्रस्तुत किये है, किताबें लिखी हैं और जब हम उन किताबों को पढ़ते हैं तो लगता है कि समाज में जो आतंकवादी टेरॅरिस्ट आदि कहलाते रहे हैं, ये क्रान्तिकारी वैसे नहीं हैं। वहाँ जो उत्पात, दंगे, विध्वंस इत्यादि होते हैं उनसे मिलते-जुलते हमारे देश में भी होते हैं। किन्तु हमारे बीच में इनका स्वरूप केवल स्ट्रीट कार्नर कल्चर वाला है—सड़कों और चौराहों पर दंगे मचाने वाले लोग ! यह इनकी संस्कृति हो गयी है। परन्तु वहाँ के युवकों के सामने एक उद्देश्य है। उन्हें आज का समाज बदलना है। लेकिन आगे का समाज कैसा होगा—ऐसा पूछने पर वे कहते हैं कि हमारे सामने उसकी कोई बनी-बनाई तस्वीर नहीं है। हम कोई कटा-छँटा नक्शा बनाकर पेश नहीं कर सकते। हमारा भविष्य ब्ल्यू-प्रिन्ट नहीं होगा, वाल-प्रिन्ट होगा। यानी परिस्थितियों के अनुरूप समाज का स्वरूप बदलता चला जायेगा। अवश्य ही कुछ मूल बातों पर, मूल सिद्धान्तों पर हम लोग एकमत हैं। नये समाज की नींव जिन नये तत्वों पर खड़ी की जानी है, उसके बारे में हम सब एकमत हैं। कौन-सा है यह तत्त्व ? १८७१ में फ्रांस में एक एसोसिऐशन था—उस एसोसिऐशन के संयोजकों ने अपने-अपने उद्देश्यों का जो वर्णन किया है आज के क्रान्ति-कारक कहते हैं कि हमारे उद्देश्य उनसे मिलते-जुलते हैं। 'टू क्रिएट ए स्टेट दैट विलीव्स नाइदर इन गवर्नमेंट, नार इन रिलीजन, नार इन दी आर्मी।' हम ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिनका विश्वास प्रशासन, धर्म या सेना पर नहीं होगा। मार्क्स ने कहा था कि धर्म अफ़ीम की गोली है। आज कहा जा रहा है कि धर्म आध्यात्मिक गोलियां बनाने का कारखाना है। इस रसशाला में आध्यात्मिक गोलियाँ तैयार होती हैं और फिर वे लोगों में बाँटी जाती हैं। आज धर्म की यह स्थिति हो गयी है।

गांधी से समानता

ऊपर जो उद्देश्य बताये गये हैं यदि इनमें और गांधी के उद्देश्यों में कोई फ़र्क़ हो तो आप मुझे बतायें। गांधी ने प्रारम्भ में क्या कहा था ? उसने कहा

कि ईश्वर है यह सच है, किन्तु उसने फिर क्या देखा कि मन्दिर का ईश्वर अलग और गुरुद्वारे का ईश्वर अलग ! ये सारे ईश्वर एक-दूसरे के मुकाबले में मुट्ठी तानकर खड़े हैं। अब जो ईश्वर के खिलाफ़ खड़ा है उसे शैतान कहा गया है। तो जो ईश्वर, ईश्वर के विरोध में खड़ा हो जाये वह शैतान हो जायेगा। यह बात गांधी की समझ में आयी कि गिरजाघर, मन्दिर, मस्जिद ईश्वर के विशेषण हैं अर्थात यह देव यहाँ का, वह वहाँ का। देव या ईश्वर शब्द सब जगह है। गणित के हिसाब से कॉमन फैक्टर है। कॉमन फैक्टर कैंसिल कर दिया जाता है, और इसलिए फिर जो बच जाय वह बच जाय। इसलिए मेरा यह कहना है कि ये जो सारे ईश्वर हैं यदि वे हमारे अपने-अपने पूजागृहों में हैं तो उन्हें पूजागृहों से बाहर आ जाना चाहिए और वे पूजाघरों से बाहर आकर ही ईश्वर को प्राप्त कर सकेंगे। इसलिए गांधी ने अपने सूत्र को उल्टा कर दूसरी तरह से फिर कहा कि सत्य ही ईश्वर है। आज संगठित स्वरूप का जो धर्म है उसके कर्म का अभिप्राय सम्प्रदाय है। क्रिश्चिनिटी नहीं, चर्चिआनिटी। 'निअरर द चर्च फरदर फ्रॉम गॉड'—सगठित धर्म ईश्वरविमुख नहीं रहता, सम्प्रदायाभिमुख हो जाता है। ईश्वर-विमुख हो जाता है, लोक विमुख हो जाता है। इसीलिए संगठित धर्मों में अलग-अलग तड़ें पड़ जाती हैं। एक सम्प्रदाय कई सम्प्रदायों में बंट जाता है। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म वालों से लड़ते हैं और एक ही धर्म वाले लोग अपने धर्म के दूसरे सम्प्रदाय के लोगों से लड़ते हैं। अर्थात् झगड़े और टंटे बढ़ते हैं। इसीलिए गांधीजी ने सामूहिक प्रार्थना का उपक्रम किया और संकेत किया कि ईश्वर एक है।

मार्क्स की भविष्यवाणी

सेना और सरकार के बारे में सभी क्रान्तिकारी एकमत हैं। काल मार्क्स की बात हम जानते हैं। काल मार्क्स क्रान्ति का दुनिया में पहला पैगम्बर है जिसने दबे हुए आदमी, परिवंचित आदमी और सर्वहारा के विषय में बातचीत की। उसने तीन बातें कहीं—एक तो उसने यह कहा कि ऐसा दिन आयेगा अब गरीब-अमीर इस प्रकार का भेद नहीं रहेगा। मैंने भी काफ़ी पढ़ा है और बड़े-बड़े विद्वानों से बातचीत की है किन्तु किसी पुस्तक में ऐसा नहीं मिला जिसमें लिखा हो कि ऐसा कोई दिन आनेवाला है। ऐसी बात न किसी धर्म में है, न किसी धर्मग्रन्थ में है और न किसी धर्म-प्रवर्तक द्वारा कही गयी है। दूसरी बात उसने यह कही कि एक ऐसा दिन आयेगा जब राज्य नहीं रहेगा। महाभारत में एक ऐसे काल का उल्लेख मिलता है जब राज्य नहीं था, दंड नहीं था। किन्तु ऐसा काल फिर आनेवाला है और इस कलियुग में ही आनेवाला है, सतयुग

की यह सम्भावना समाप्त नहीं हो गयी है, ऐसा विश्वास भी कहीं प्रकट नहीं किया गया। उसने यह भी कहा कि ऐसा दिन जब आयेगा तब न युद्ध रहेगा न शस्त्र रहेंगे।

क्रान्ति अपनी अपनी

अहिंसा की बात तो है। किसी की जान न ली जाय, मांसाहार न करें—यह सब तो हमने सुना है, पढ़ा है। ईसा का एक वाक्य है कि जो तलवार से आयेगा वह तलवार से जायेगा, किन्तु उसके अनुयायियों ने इस वाक्य पर कोई ध्यान नहीं दिया, इसलिए किसी धर्म में मार्क्स के इस व न का पर्याय भी हमें नही मिलता। संक्षेप में हमें समझ लेना चाहिए कि यह क्रान्ति का क्षण है। क्रान्ति के क्षण का अर्थ है वह क्षण जब मनुष्य के सपने और सामाजिक स्थितियाँ एक-दूसरे से हाथ मिलाकर चलें, साथी-संगी हो जायें, एक हो जायें। रियालिटी एण्ड ड्रीम, सोशल रियालिटी एण्ड सोशल ड्रीम। सामाजिक स्वप्न और सामाजिक वस्तुस्थिति जिस क्षण इनका संगम होता है वह क्षण क्रान्ति का होता है। 'एण्ड दैट इज द मोमेन्ट आफ एक्सटैसी आफ हिस्ट्री' इतिहास के आनन्दोल्लास का क्षण होता है वह। जब मानवता और वास्तविकता—ये एक दिशा में बढ़ने लगती हैं तब लगता है कि क्रान्ति पास आ गयी। क्रान्ति का क्षण पास आ गया है। किन्तु इतने से ही काम नहीं चलेगा। क्रान्ति होनी चाहिए। वह क्षण जितना पास आता है उससे अधिक पास लाना चाहिए। कॉन बैन्डिक नाम के एक आदमी ने अपनी किताब में लिखा है कि क्रान्ति को पास लाना चाहिए, अब वह क्षितिज के किसी कोने में नहीं रह सकती। उसकी किताब का नाम जरा लम्बा है—अब्सोल्यूट कम्युनिज्म द लेफ्टविंग ऑल्टरनेटिव। एक्स्ट्रीम लेफ्ट के जितने प्रकार के पक्ष हैं उसने उसका पर्याय विकल्प सुझाया है और वह कहता है कि वह सब 'अब्सोलीट' काल बाह्य हो गया है, इसका जमाना नहीं रहा। वह पुराना पड़ गया है। यह पर्याय-विकल्प बचा नहीं तब क्या किया जाय। उसने कहा कि अन्तिम बात अभी कही नहीं गयी है और इतिहास में अन्तिम बात कभी नहीं कही जाती। लोगों के लिए कुछ मत करो, लोगों के साथ कुछ करो। क्रान्ति लोगों के लिए नहीं, लोगों के साथ-साथ। उसने क्यूबा की क्रान्ति का उदाहरण दिया। क्यूबा की क्रान्ति के बारे में चौबीस बरस की उम्र के एक तरुण रैगिस डैबरे ने 'रेवोल्यूशन इन द रिवोल्यूशन' नाम की एक किताब लिखी है। उसे यह पुस्तक लिखने के कारण तीस बरस का कारावास दिया गया। उसने इस किताब में कहा है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ में दो क्रान्तियाँ हुईं। एक रूस में और दूसरी चीन में। किन्तु वहाँ

क्रान्ति की जो प्रक्रिया काम में आयी वह लैटिन अमरीका में उपयोगी नहीं होगी क्योंकि परिस्थितियाँ भिन्न हैं। उसने कहा कि 'रेवोल्यूसन कान्ट बी एक्सपोर्टेड' जैसे यह वाक्य स्टैलिन का है—क्रान्ति का निर्यात नहीं हो सकता। एक देश दूसरे देश की क्रान्ति की नक़ल नहीं कर सकता। कुछ वर्षों पहले हमारे यहाँ किसी ने मजाक में कहा था कि रूस में पानी बरसता है तो हमारे यहाँ का क्रान्तिकारी छतरी लगा लेता है। यानी नक़ल-नवीसी, क्रान्ति नहीं है। हरेक देश में क्रान्तियां अलग-अलग प्रक्रियाओं से, परिस्थितियों के हिसाब से होती हैं। इसलिए इस लेखक ने लिखा है कि लैटिन अमरीका में जो क्रान्ति होगी वह लैटिन अमरीका की परिस्थिति के अनुसार होगी। न वह रूस की ज़ारशाही परिस्थितियों के अनुरूप होगी, न च्यांग काई शेक की चीन की परिस्थितियों के अनुसार। इन दिनों इन सारे क्रान्तिकारियों का शंकराचार्य हरबर्ट माटक्यूस नाम का एक प्रोफेसर है। एक किताब का नाम है 'वन डायमेन्शल मैन' और दूसरी का नाम है 'ईरोस एण्ड सिविलाइजेशन'। इस पुस्तक में युवकों के विषय में एक वाक्य है—'अवर मीन्स हैव प्रेज्यूडिस्ट अवर एम्स'—हमारे साधनों के कारण हमारे साध्य दूषित हो गए हैं, अर्थात् साधन साध्यानुरूप होना चाहिए। क्रान्ति की प्रक्रिया में यह गांधी का दिया हुआ नया आयाम है। उसने कहा था कि अगर तुम्हारे साधन तुम्हारे साध्य के अनुरूप नहीं हैं तो जो कुछ मिलेगा वह वास्तव में तुम्हारा साध्य नहीं होगा। हमारे मन का साध्य बिल्कुल ठीक साधनों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

गांधी के तीन नये आयाम

गांधी ने क्रान्ति की प्रक्रिया में तीन नवीन आयाम समाविष्ट किए—एक, क्रान्तिकारक ने अपने आचरण में—इंडीविजुअल कंडक्ट। व्यक्ति के अपने जीवन में क्रान्ति के मूल्य साकार होने चाहिएं। इसे उसने हृदय-परिवर्तन कहा हृदय-परिवर्तन का प्रारम्भ खुद अपने से होना चाहिए। जिसका खुद का मत बदला नहीं है अगर वह क्रान्ति में कूदेगा तो मनुष्य बदल सकते हैं, परिस्थिति नहीं बदलेगी। ऐसा आदमी जो क्रान्ति करेगा वह क्रान्ति ऊपरी होगी। यानी शासनकर्ता बदल जायेंगे, परिस्थितियाँ नहीं बदलेंगी। हमारे देश में शासनकर्ता सब जगह कभी क्रमशः और कभी बहुत बड़े पैमाने पर बदले। केरल से लगाकर मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश सब जगह शासनकर्ता बदले, किन्तु परिस्थितियाँ कहीं नहीं बदली। कारण यही है कि जिन लोगों ने बदलाव किया, उनके मन नहीं बदले थे। स्वयं उनके जीवन में क्रान्ति के मूल्य साकार नहीं हुए थे। हृदय परिवर्तन को 'इंडिविजुअल कोड ऑफ कंडक्ट' कहा जाता है। क्रान्ति

करने वाले को पहले अपना हृदय परिवर्तन करना चाहिए।

गांधी ने दूसरा आयाम दिया साधन और साध्य-सम्बन्धी उसने कहा कि जैसा तुम्हारा साध्य हो वैसा ही साधन। साध्य क्या है ? 'प्यूरीफिकेशन ऑफ ह्यूमन रिलेशनशिप'। आदमी और आदमी में जो सम्बन्ध हैं उन सम्बन्धों का शुद्धीकरण क्रान्ति का साध्य है। पॉल बैन्डिक्ट ने कहा है कि हमने उत्तरदायित्व की माँग की, यह कैसे सम्भव हुआ ! जब हम बन्धुत्व के विकास के लिए संघर्ष कर रहे थे तब एक प्रकार के उत्तरदायित्व के विकास की ज़रूरत महसूस हुई। यदि यह विकास केवल सैनिकों में होता है तो क्रान्ति के बाद बन्धुत्व की स्थापना नहीं हो सकती। सेना की भी विभिन्न टुकड़ियों में भाईचारा होता है, किन्तु उस भाईचारे का वास्तविक नाम 'एस्प्रिट डी कोर' है। सैनिक वृत्ति और बन्धुत्व में अन्तर है। बन्धुत्व का विकास क्रान्ति की प्रक्रिया में से विकसित होना चाहिए। क्रान्ति इस ढंग से होनी चाहिए कि मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी समाप्त होती चली जाये और एक-दूसरे के पास आते चले जायें। अब सोचें कि वह प्रक्रिया कहाँ की है।

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि अहिंसा गांधी का सिद्धान्त नहीं है। गांधी अहिंसावादी नहीं थे। उन्होंने शस्त्र की निन्दा नहीं की, युद्ध की निन्दा नहीं की, निशस्त्रीकरण की बात नहीं की। शस्त्र-निरपेक्ष शौर्य, ऐसी वीर वृत्ति की बात की। अर्थात् मन की उस परिस्थिति की बात जो शस्त्रातीत हो जाती है, जहाँ शस्त्र की आवश्यकता नहीं रहती और क्रान्ति को जिसकी आवश्यकता होती है। गांधी यही कहते थे कि केवल शस्त्र या युद्ध के निषेध से वीर वृत्ति पैदा नहीं होती। सारे शांतिवादी वीरवृत्ति के लोग नहीं होते। गांधी प्रतिकार निष्ठ व्यक्ति था, वह चाहता था कि समाज में वीर-वृत्ति का विकास होना चाहिए। वह स्वयं इसी वृत्ति का था और इसीलिए उसने भाईचारे पर, बन्धुत्व पर ज़ोर दिया। उसने कहा कि मनुष्यों को एक-दूसरे के पास आना चाहिए। वे एक-दूसरे से दूर किसलिए जाते हैं—तीन कारणों से। एक सत्ता दूसरा सम्पत्ति और तीसरा कारण सत्ता-सम्पत्ति की मदद के लिए आये हुए शस्त्र। सत्ता, सम्पत्ति और शस्त्र के तीन कारण हैं जो आदमियों और आदमियों के बीच में नित्य बड़ी-बड़ी दरारें डालते रहते हैं। इसलिए इन तीन साधनों का निराकरण ही क्रान्ति है। निराकरण किस तरह किया जाय। यह तो स्पष्ट है ही कि जो उपाय काम में आयेंगे उसमें सत्ता, शस्त्र, सम्पत्ति का उपयोग नहीं किया जायेगा। ये क्रान्ति के लिए निकम्मे साधन हैं। क्रान्ति की प्रक्रिया से सत्ता की प्रतिष्ठा, सम्पत्ति की प्रतिष्ठा अथवा शस्त्र की प्रतिष्ठा नहीं बढ़नी चाहिए।

गांधी का कहना है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच रागद्वेष बढ़ाने वाले जो कारण हैं उन कारणों को समाप्त करते हुए मनुष्यों के पास आना चाहिए और सम्बन्धों का शुद्धीकरण किया जाना चाहिए। अब यह है अहिंसा किन्तु बुद्ध की अहिंसा नहीं है, ईसा की अहिंसा नहीं है। हम जिसे गांधी की अहिंसा समझते हैं वह भी नहीं है। शान्तिवादियों या अहिंसावादियों की अहिंसा नहीं है, तब फिर यह क्या है। यह उत्पादक श्रम है, बिना उत्पादक श्रम के मनुष्य को मनुष्य के पास लाने वाली अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। अगर उत्पादन करने वाले में औद्योगिकता की अवतारणा हो चुकी है तो उसे शस्त्र पकड़ने की जरूरत नहीं है। जिसमें श्रम का अवतार हो चुका है अगर उसने शस्त्र की शरण ग्रहण कर ली तो क्रान्ति शस्त्र के साथ चली जायेगी। अर्थात् शस्त्र धारक के साथ चली जायेगी। तब तलवार की क्रान्ति नहीं होगी, औजार की क्रान्ति होगी। इसी प्रकार जिसके हाथ में औजार है वह अगर सम्पत्ति की शरण में चला गया तो क्रान्ति सम्पत्ति की जेब में समा जायेगी।

क्रान्ति को लोक क्रान्ति होना है, किन्तु लोक का क्या अर्थ है? सत्ता, शस्त्र, सम्पत्ति इनमें से जिनकी भी आज समाज में प्रतिष्ठा है इनमें से कोई भी साधन जिनके पास नहीं हैं, ऐसे लोग! उनके पास होंगे लोक-सुलभ साधन और तब साध्यानुरूप साधनों से जो क्रान्ति होगी वह सच्ची क्रान्ति होगी।

छः

कला संगीत-संस्कृति
जीवन सबसे बड़ी कला
कला सार्वभौम
कला सार्वकालिक
सहजीवन
जीवन की विभूतियां
हृदय बदले
कला की आंख

कला-संगीत-संस्कृति

जीवन सबसे बड़ी कला

चार्ल्स लैंब और मेरी लैंब की एक किताब है निबंधों की। उसमें संगीत पर एक निबंध है। पहला वाक्य है, "संगीत के लिए जैसा कान चाहिए वैसा मेरे पास कान नहीं है।" डॉ० जानसन ने तो यहाँ तक कह डाला कि सब तरह के हल्ले-गुल्ले में जो संगीत है वह संगीत में सबसे कम कर्कश, कम से कम कर्ण-कटु संगीत है। हमेशा यह सोचा जाता रहा है कि कला और संगीत के लिए एक अलग किस्म की आँख व कान चाहिए जो साधारण मनुष्य की आँख व कान से भिन्न हो। आजकल के तरुणों की परिभाषा में कहूँ तो लैला को देखने के लिए आँख मजनूं की चाहिए। यह आँख कहाँ से आती है। मेरे पास तो है नहीं। पर एक कहावत है कि रोना और गाना स्वाभाविक है। मनुष्य के लिए जितना रोना स्वाभाविक है उतना ही गाना भी स्वाभाविक है। सभ्यता के विकास के इतिहास में कला पहले आयी, साहित्य बाद में आया। आज भी जहाँ की भाषा हम नहीं जानते वहाँ की कला को हम समझ लेते हैं। अक्षर नहीं जानता पर चित्र दिखता है। कला स्वाभाविक है और अगर उसे शास्त्रीय बनाकर बिगाड़ा न जाता, तो शायद मनुष्य की सुरुचि अक्षुण्ण रहती जो रह नहीं पायी। कला को एक शास्त्र बना दिया गया। शास्त्र का मतलब है जिस चीज़ को सब लोग जानते हैं, उसको कठिन बना दो। यही है शास्त्र की परिभाषा। शास्त्रीय अब तक यही कहते आये हैं। जब मैं कहता हूँ कि कला स्वाभाविक है, तो मेरा अर्थ है कि मर्त्यलोक में जीवन से बड़ी कला कोई नहीं है। क्या यह जीवन 'ललित-कला' बन सकता है? ओक ने कहा था मैं सोया था, सपना देख रहा था कि जीवन संदरता

है। पर जब जागा तो समझा कि जीवन कर्त्तव्य है। और मैं समझता हूँ कि जब जीवन में कर्त्तव्य आया, सुंदरता समाप्त हो गयी। कर्त्तव्य का विधान होता है, उसका आदेश होता है। सौंदर्य तो स्वाभाविक है। इसका संस्कृति के साथ क्या संबंध है ? कला कुछ सीमित, मर्यादित हो जाती है, जीवन की अभिव्यक्ति का विशिष्ट रूप है संस्कृति। जब यह विशिष्ट रूप परिमित हो जाता है, संकीर्ण हो जाता है, तब यह कला को भी परिमित कर देता है, संकीर्ण कर देता है। यह संस्कृति का स्वभाव है। प्रकृति, विकृति और संस्कृति। संस्कृति संस्कार डालती है। और ये सारे संस्कार कला को आशय देते हैं। कला का जो आशय होता है वह उस संस्कृति से ही आता है। हरेक की अलग-अलग संस्कृति होती है। वैसे सौंदर्य की अभिरुचि, उसको देखने की उत्कंठा मनुष्य में स्वभाविक है। जितनी स्वाभाविक उसकी अन्य प्रवृत्तियाँ और भावनाएं, उतनी ही कला की। मनुष्य मात्र के लिए नमक खारा है और शक्कर मीठी है। करेला कड़ुवा है और केला मीठा। इसे लेकर पूर्व-पश्चिम में कोई, किसी प्रकार का फर्क नहीं है।

कला सार्व-भौम

साहित्य संस्कृति का अनुगामी होता है; कला सार्वभौम। लेकिन उसे मनुष्य ने सार्वभौम रहने नहीं दिया। उसको भी अपनी मनोवृत्ति से सीमित कर दिया है। इसलिए मनुष्य द्वारा निर्मित कला के प्रति ही नहीं, प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति भी मनुष्य में भिन्न-भिन्न अभिरुचियाँ बन गयी हैं। कालिदास ने हिमालय प्रत्यक्ष देखा था या नहीं यह तो पता नहीं, लेकिन कहा कि हिमालय 'देवतात्मा' है। अब वहाँ कोई व्यापारी जाता तो सोचता अरे यहाँ इतना बर्फ़ फ़िजूल जा रहा है, यहाँ तो आइसक्रीम की फैक्ट्री बहुत अच्छी चल सकती है। अर्थात् दर्शन बदल जाता। दर्शन बदलने के कारण उसके सौंदर्य की अभिरुचि भी। याज्ञवल्क्य से मैत्रेयी ने कहा कि मुझे ऐसा कुछ ज्ञान बताओ जिससे यह हमारी पृथ्वी संपत्ति से भरपूर हो जाये। वैसे यह वसुमती कहलाती ही है—सम्पत्ति से भरी हुई। सो याज्ञवल्क्य ने कहा कि तब जैसे उपक्रम वालों का जीवन होता है, वैसा तेरा हो जायेगा। मृत से अमृत की आशा मत करो। कला जिस संदर्भ में होती है उस संदर्भ पर उसकी संकीर्णता और व्यापकता निर्भर होती है। इसलिए कला की व्यापकता के लिए जीवन की व्यापकता की भी आवश्यकता है। जीवन की व्यापकता में दूसरे के जीवन का जितना अधिक प्रवेश होगा, जीवन उतना अधिक व्यापक होगा। यही बात कला पर भी लागू है। हम जिस संदर्भ में रहते हैं, वह संदर्भ बाज़ारू है। 'मालविकाग्निमित्रम्' में नृत्य कला के शिक्षक से कहा जाता है नृत्य सिखाने के लिए; तो वह कहता है कि मैं शौक से सिखाऊँगा। पूछा जाता

है कि आप फ़ीस क्या लेंगे ? फ़ीस ? वह कहता है कि नृत्य की फ़ीस नहीं हो सकती, जिसका ज्ञान जीविका के लिए है, वह वाणिज्य है, वह व्यक्ति ज्ञान का व्यापार करता है। इस संदर्भ में इंसान बिकता है, भगवान बिकता है, और कला भी बिकती है, संगीत भी बिकता है। यह सारा मामला जीविका का हो जाता है जब संगीत और कला जीविका के माध्यम बन जाते हैं। कला-संगीत इस तरह कुछेक व्यक्तियों का व्यवसाय बन जाता है। व्यवसाय किसी सांस्कृतिक मूल्य को नहीं पहचानते। जीवन के जितने भी मूल्य हैं उन्हें व्यवसाय पहचानता ही नहीं है। जिस समाज में हम रहे हैं, पैदा हुए हैं, उस समाज में हज़ारों वर्षों से व्यवसाय के आधार पर मनुष्यों का वर्गीकरण है। इसलिए इससे कला का जो विकास अब तक हुआ है उसमें कसर है। नदियाँ, पहाड़, जंगल और वृक्ष, पशु और पक्षी, इनकी सुंदरता से लोग प्रभावित तो होते हैं, पर दृष्टि कुछ मंद हो गयी है। यह मंद संस्कारों के कारण हुई है। यह जो प्रकाश हमें मिला है संस्कृति के कारण वह अंधकार को और अधिक ठीक से पहचानने में, देखने में मदद देता है। मेरी समझ में यही वेदना रवि ठाकुर की थी, उन्हें विश्वकवि कहा गया है। मनुष्य की वेदना मुखरित हुई, पर स्पष्टता के साथ नहीं। संस्कृति में सबसे बड़ा दोष यह रहा है कि इसमें मनुष्य का मूल्य नहीं रहा है। मनुष्य का मूल्य केवल मनुष्य के नाते—खालिस इंसान के नाते शुद्ध मनुष्य के नाते। इसलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि जिनको तुमने अपमानित किया है, उनके समान ही तुमको अपमानित होना पड़ेगा। यहाँ मनुष्य 'फंक्शनल' रहा, उसे मनुष्य होने के लिए अवकाश ही नहीं मिला। मैं अनुबंध बतला रहा हूँ कला का, संस्कृति के साथ इसलिए कला के लिए जितना आशय था, वह उसके सांस्कृतिक संदर्भ में से आया था। जीवन में से सुंदरता काफूर हो गयी, तिरोहित हो गयी। यहाँ मैं तीन आदमियों के तीन उद्‌गार बताऊँगा। पहला कालिदास से लेता हूँ।

जब इंदुमति मर गयी तो अज कहता है कि जो आये हैं शरीर में, मरण उनकी प्रकृति है। जीवन प्रकृति है ऐसा नहीं। शेक्सपीयर ने कहा कि यह मूर्ख की कही गयी कहावत है इसमें आक्रोश भी है, अमर्ष भी है। पर सचाई कुछ नहीं है। अर्थ कुछ नहीं। बर्नाडशा ने 'कहा कि मर्त्यलोक में सब ओर मरण ही मरण है, जीवन संयोग मालूम होता है। किसी रसिक कलाकार ने जवाब दिया कि ईश्वर जब अपनी किसी रचना पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहता तो वह अपना एक उपनाम रख लेता है और वह उपनाम है मृत्यु।

कला सार्वकालिक

जीवन-कला एक सुगंध है। इसके लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है।

जीवन की सुगंध कला और साहित्य में अनायास ही प्रकट होनी चाहिए। फ्रांस का एक लेखक हुआ है। उसने लिखा है कि ईश्वर की रचना में एक बड़ी बात यह है कि उसमें शत-प्रतिशत बुराई नहीं हो सकती। शत प्रतिशत अच्छाई हो सकती है, पर बुराई नहीं। मैंने एक बार कहा था कि मैं संस्कृति के मामले में पूर्व या पश्चिम जैसे भेद नहीं मानता। पृथ्वी गोल है, इससे पूर्व या पश्चिम जैसी चीजें हमारी कल्पना-मात्र हैं। तो भी कुछ बातें ऐसी हैं जो विशिष्ट हैं। विशिष्टता और संकीर्णता में अंतर है। सूर्य का प्रकाश व्यापक है। चिराग़ का प्रकाश सीमित है, मर्यादित है, पर व्यापकता का विरोध नहीं है वह। तो हमारे यहाँ जो दर्शन हुआ उसमें एक बड़ी महत्त्व की बात यह है कि इस देश की किसी भी भाषा में शैतान के लिए कोई शब्द नहीं है। इसका अनुवाद ही नहीं हो सकता आखिर आप कहते हैं कि सबको बनाने वाला ईश्वर है तो शैतान को बनाने वाला कौन है। वह भी तो ईश्वर की ही संतान होगी। वह औरस पुत्र होगा। नहीं तो शैतान को बनाने के लिए किसी दूसरे ईश्वर की कल्पना करनी पड़ेगी। और यदि ईश्वर दो हो गये तो दोनों शैतान भी होंगे। क्योंकि ईश्वर के सिंहासन के दावेदार का ही नाम शैतान है। तो बुराई की स्वतंत्र सत्ता को हमारे यहाँ माना नहीं गया है। उसका एक कारण यह है कि बुराई, मूल्य नहीं है। भलाई, अच्छाई मूल्य हैं। अच्छाई स्वभाव है, इसे मैं आस्तिकता कहता हूँ। जो यह मानता है कि मनुष्य का स्वभाव शुभ है, सज्जनता का है, वह आस्तिकता है। और इसके यदि प्रमाण चाहिए तो वे सब जगह भरे पड़े हैं जीवन में। पहला प्रमाण यह है कि बुराई अपने नाम पर नहीं चलती। वह अपनी टाँगों पर खड़ी नहीं रह सकती। जाली सिक्का अपने नाम पर नहीं चल सकता, उसे तो असली सिक्के के नाम पर चलना पड़ता है। असली सिक्का मूल्य है, जाली सिक्का मूल्य नहीं। झूठ बोलने के लिए झूठ को यह बहाना करना पड़ता है कि मैं सच हूँ। सच के भेष में झूठ आयेगा तभी वह चल सकेगा। दुर्गुण कभी अपने नाम पर नहीं चल पाता। यह एक कारण है, स्वभाव है जिसके लिए किसी कारण की ज़रूरत नहीं पड़ती, कोई कैफ़ियत नहीं देनी पड़ती। झूठ क्यों बोले ? कैफ़ियत दो। उसे क्यों मारा, कारण बताओ। क्यों नहीं मारा, स्वभाव है ऐसा इसलिए। प्यार क्यों करता है, स्वभाव है ऐसा इसलिए। उससे दुश्मनी क्यों हो गयी, कुछ कारण थे। कारण के बिना जो होता है वही स्वभाव है। मनुष्य का स्वभाव है दूसरे के साथ जीना। अकेला जी नहीं सकता। उपनिषद् में आता है : आत्मा अकेला पैदा हुआ। रूह इसका पर्यायवाची है। तो आत्मा अकेला था। उसकी तबीयत नहीं लगी। क्या हो फिर ? दूसरा कोई और हो। पर एक दिक्कत आयी। दूसरे से तो भय लगता है। तो जीवन की कला क्या है। दूसरा दूसरा न

रह जाये वह अपना बन जाये। दूसरे को अपना लेना जीवन की कला है। हैनरी मिलर ने कहा था, "मनुष्य की चेतना के सारे क्षेत्रों में एक आमूल क्रांति की आवश्यकता है, कला और साहित्य के क्षेत्र में विशेषकर। क्योंकि कला और साहित्य दोनों वर्तमान से आगे जाते हैं। वे भूत और वर्तमान में ही नहीं रहते।" साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से इतिहास को भी बदल दिया। पास्कर बड़ा इतिहासकार भी था और दार्शनिक भी। उसने कहा कि इतिहास एक ढकोसला है। दूसरे ने टिप्पणी की कि इतिहास एक ऐसी दंतकथा है जिसे सब सच मानते हैं।

सह जीवन

कला और जीवन में जो कला है वह दूसरों को अपना बनाने से है। 'तुम' को 'मैं' में बदलने में है। बच्चा अँधेरे में जाने से डरता है। मां पूछती है वहाँ तो कोई नहीं है, क्यों डर रहा है ? वहाँ तो अंधेरा है खाली। तो वह कहता है कोई होगा दूसरा उस अँधेरे में, तो फिर अपने भाई को लेकर जा। यों तो भाई भी दूसरा ही है। लेकिन यह दूसरा अपना हो गया है। दूसरे को अपनाने की कला है यह। इसे कौशल कहा है। इस सृष्टि में सबसे वंद्य है जीवन और उस जीवन का विकास कला से ही होता है। मनुष्य का जहाँ मूल्य नहीं होगा वहाँ जीवन नहीं होगा। गीता में कहा भी है मैं तुमको बिलकुल गुप्त ज्ञान बताता हूँ कि मनुष्य से श्रेष्ठ, उससे बडा कोई और नहीं है। वह सर्वोपरि है। इसका कारण भी है। पशु, देवता और मनुष्य में एक बड़ा अंतर है। मनुष्य गलती कर सकता है। पशु गलती नहीं कर कर सकता और हमने यह तो माना ही है कि देवता गलती कर ही नहीं सकते। मनुष्य गलती करता है और उस गलती को सुधारता है, सुधार भी सकता है। यह पशु भी नहीं कर सकता, देवता भी नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्य के लिए पुरुषार्थ कहा गया। वह अपने जीवन को बिगाड़ सकता है और अपने जीवन को बना भी सकता है। इस कला से वह अवगत हो, दूसरों के साथ जीने की कला को हस्तगत करे।

अब ये दूसरे कौन-कौन हैं ? एक तो मनुष्य है और दूसरे मनुष्य हैं —मनुष्य मात्र। संस्कृति की चिप्पियाँ यदि मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग करती हैं तो वे व्यावर्तक हैं। क्रीड़ा, खेल। हम कहते हैं कि जीवन लीला बन जाना चाहिए। कृष्ण का जीवन लीला था, राम का जीवन भी लीला था। भगवान की भी लीला ही मानी जाती है। मैंने इस खेल को, लीला को जीवन की सबसे अधिक कलापूर्ण वस्तु माना है। अब यह खेल नहीं रहा है। अब तो खेल भी रोजगार हो गया है। जबसे खेल रोजगार बन गया तब से हमारे खेल के मैदान दूकानें बन गई हैं। खेल का मुख्य लक्षण है, उसमें सब हमारे गोई होते हैं, साथी

होते हैं। जेल में था, ब्रिज खेलना नहीं आता था। तीन थे जो खेल जानते थे। उन्हें हमेशा चौथे की ज़रूरत पड़ती थी। तो मुझसे कहते थे तुम बैठ जाओ, डमी बन जाना। अपने खिलाफ़ खेलने के लिए आग्रह से बुलाते थे। तो जो प्रतिपक्षी होता है। वह भी साथी ही होता है, दुश्मन नहीं होता। यह खेल की विशेषता है। क्या जीवन भी इसी तरह दरअसल खेल बन सकता है? क्रीड़ा, लीला बन सकता है। इसके लिए सारे बंधनों से ऊपर जाना पड़ेगा, सारी सीमाओं से अलग हटना पड़ेगा। हमारे यहाँ दो प्रतीक हैं। प्रतीक में कुछ संकेत छिपा रहता है। एक है श्रीकृष्ण का प्रतीक। इस कृष्ण के लिए नैतिकता के कोई नियम नहीं हैं, सभ्यता की कोई मर्यादा नहीं है। कभी शौर्य दिखाता है, कभी रण से भागता है लड़ाई छोड़कर। कभी मिट्टी खाता है तो कभी वैकुंठ का वैभव दिखाता है। कभी गीता का ज्ञान देता है, तो कभी गोपियों के साथ खेलता है? ऐसा विचित्र चरित्र है इस कृष्ण का, सारे बंधनों से मुक्त, किसी तरह का कोई संकोच नहीं। शंकराचार्य ने एक जगह अपने भाष्य में कहा है कि जो मुक्त होना चाहता है उसके लिए धर्म भी बंधन है, पाप है क्योंकि वह धर्म से बाँधता है। इस तरह एक प्रतीक है कृष्ण का। किसी ने एक पुस्तक लिखी कृष्ण पर, नाम दिया 'सोल आफ इंडिया'—भारत की आत्मा। तो श्रीअरविंद ने कहा भारत की आत्मा नहीं, मनुष्य की आत्मा। दूसरी भव्य अनुभूति, प्रतीक है शिव। दिखता तो अमंगल है, लेकिन जो भक्त हैं, उनके लिए मंगलकारी है। तुलसीदास ने कहा यह मरघट में भी जीवन के बीज बोता है। विष्णु के तो पैर दबाती हैं लक्ष्मी, राम की छाया की तरह चलती हैं सीता पर इस शिव ने तो अपने आधे शरीर में ही पार्वती को जगह दे दी वह अर्धनारीश्वर है तो पार्वती भी अर्धनरेश्वर है। समग्र मनुष्य इस शिव में, स्त्री-पुरुष दोनों के गुणों का समाहार होता है। संश्लिष्ट हैं दोनों के गुण। पहला संकेत कहा था मैंने कि बुराई का अपना अलग अस्तित्व नहीं है, वह भलाई के बल पर जीती है। यह आस्तिकता का संकेत है एक ने सवाल किया था—भ्रष्टाचार कैसे मिटे? एक तो जवाब यह है कि भ्रष्टाचार सार्वत्रिक हो जाए तो अपने आप मिट जायेगा। दुर्गुण में यह बड़ा सद्गुण है कि वह व्यापक नहीं हो पाता। दुर्गुण मनुष्य को मनुष्य से मिलाता नहीं है। चार आदमी मिलकर कोई अपराध करना चाहें, बेईमानी करना चाहें तो उन चारों में एक प्रकार के ईमान की ज़रूरत होगी। मिलकर नरक जाने की कोशिश करेंगे तो सिर्फ़ मिलकर गये थे इसलिए स्वर्ग पहुँच जायेंगे। सहजीवन में यह गुण है। सहजीवन सचाई के सिवा रह ही नहीं सकता। सचाई व्यापक हो सकती है पर बुराई नहीं। इसलिए बुराई जीवन का मूल्य नहीं है। किसी गाँव में जाता हूँ तो लोग मुझसे

कहते हैं कि बस ऐसा भ्रष्ट गाँव है ही नहीं, कोई दूसरा, हरेक अपने गाँव के बारे में यही कहता है। अपने गाँव के हरेक आदमी को भ्रष्ट बताते हैं सिर्फ़ अपने को छोड़ कर। पर वे भूल जाते है कि मैं का ही बहुवचन हम हैं, हम एक देश में रहते है जहाँ नैतिक मूल्यों का मूल्य नहीं था। केवल धार्मिक मूल्य थे यहाँ। लेकिन धर्म का नैतिकता से कोई नाता नहीं होता। नहीं तो यहाँ इतने सारे धर्म कैसे हो पाते। धर्म में से आप ईश्वर को, नैतिकता को हटा दें तो चीज़ बच जायेगी वह होगी रस्म। हिन्दू की नैतिकता और मुस्लिम की नैतिकता दोनों समान हैं। पर रस्में जुड़ जाने पर वह अलग ही नहीं, समाप्त हो जाती है। इस देश में इन्हीं धार्मिक मूल्यों, जातीय मूल्यों का वर्चस्व था इसलिए नैतिकता को कभी ऊपर उठने का मौक़ा नहीं मिला। कौन सा ऐसा क्षेत्र है जिसमें भ्रष्टाचार न रहा हो, मंदिर, मठ, शंकराचार्य की गद्दी का क्षेत्र। दो मठ के दो शंकराचार्य, उनमें आपस में झगड़ा हो रहा है। क्यों हुआ ऐसा? मूल्य नहीं पहचाना गया। आगे-आगे वेद चलेंगे और पीछे-पीछे धनुष बाण, यह भी कहा गया। क्यों? धनुष वेद की रक्षा करता है। तो धनुष-बाण वेद से बड़ा हो गया। एक हाथ में कुरान और एक हाथ में तलवार-क्यों? कुरान की हिफ़ाजत करने के लिए। तो कुरान की नानी हो गई तलवार। एक हाथ में बाइबिल दूसरे हाथ में धर्म युद्ध, बाइबिल की रक्षा के लिए। हथियार के भरोसे अगर कला और संस्कृति जियेगी तो वह हथियार की टहलनी बन जायेगी। हरिश्चन्द्र जब काशी के बाजार में खड़ा हो जाता तो उसे खरीदने के लिए कोई आता। तारामती कहती है खरीदने वाले रत्नपाल, धनवान से कि हरिश्चन्द्र की यह तारामती रत्नपाल की दासी है तो जब यह संस्कृति और कला संपत्ति के दरबार में मुजरा नहीं करेगी और तलवार का आश्रय नहीं लेगी उसमें सामर्थ तभी आयेगा। वह सामर्थ आज दिखाई नहीं देता। कला कभी राज्य पर आश्रित है तो कभी धन पर। वह आश्रित ही बनी रहेगी तो उसमें सामर्थ कहाँ से आयेगा? वह आश्रित क्यों है? वह मुट्ठी-भर लोगों तक सीमित है। जब तक वह मुट्ठी-भर लोगों तक सीमित रहेगी। वह जीवन का शृंगार-भर बनी रहेगी, जीवन का गीत नहीं बनेगी। भृगु अपने पिता के पास जाता है, वरुण के पास। कहता है कि मुझे ब्रह्मज्ञान सिखा दीजिए। पिता कहता है ठीक है तीन दिन तक उपवास कर, तप कर तो ज्ञान प्राप्त होगा। अब यह दूसरे के कहने से तप किया जा रहा था तो वह उपवास न होकर अनशन-सा हो गया। चित्त तो उसका अन्न में लगा रहा। अन्न का ही विचार आता रहा। आया तीन दिन के बाद। कहने लगा लो अब मैं समझ गया। ब्रह्मा क्या है—अन्न ही ब्रह्मा है।

जीवन की विभूतियाँ

इसलिए जहाँ अकाल होता है, दुर्भिक्ष होता है वहाँ का साहित्य दूध, और शहद की नदियों की कल्पना करता है। यदि भूखे के बस में होता तो वह भगवान से प्रार्थना करता कि हे भगवन इस पृथ्वी को एक लड्डू में बदल दे ताकि उसे मैं खा सकूँ। हनुमानजी पैदा होते ही सूर्य को खाने लपके। बड़े तपस्वी विश्वामित्र चांडाल के यहाँ गये, कुत्ते की बासी टाँग खाने के लिए। जहाँ भूख होगी वह कला और साहित्य को खा जायेगी और पेटू उसे चट कर जायेगा, हजम कर बैठेगा। दोनों की जाति एक ही है। इन दोनों से ऊपर जो होगा वह मनुष्य कला का विकास कर सकेगा। १८वीं शताब्दी को एक आशा की सदी कहा गया। क्यों ? क्योंकि तब मनुष्य ने प्रकृति पर विजय पायी थी। उसने प्रकृति को अपनी दासी बनाया, जीवन का साधन बनाया। पर हमारे यहाँ कहा गया कि जीवन के जितने साधन हैं वे जीवन की विभूतियाँ हैं, जीवन के उपक्रम नहीं। सृष्टि हमारी सहयोगिनी है, वह साधन नहीं है। शकुंतला जब जाने लगी तो कण्व कहते हैं कि ये वृक्ष रो रहे हैं। उन पेड़ों से पशुओं में से, इसी सब में से गाय का संकेत आया। मैं समझता हूँ कि जिस दिन मनुष्य ने यह संकल्प किया होगा कि मनुष्य के जीवन में एक पशु आयेगा और वह अवध्य होगा, उसकी हत्या नहीं की जायेगी, उस दिन सांस्कृतिक क्षेत्र में उसने एक क़दम आगे रखा था। लेकिन उसमें भी धर्म आ गया फिर। धर्म आते ही कुछ गाय के मित्र बन गये, कुछ शत्रु बन गये। अगर धर्म नहीं आता, केवल जीवन की कला ही रहती तो जैसे हमने वृक्षों को अपने जीवन में शामिल किया था, उसी तरह गाय भी रहती। और फिर इसमें किसी सांप्रदायिक भेद का प्रश्न नहीं खड़ा होता। ईश्वर के नाम पर संप्रदायों ने मनुष्य के जीवन की कला को हर लिया है। इसलिए मैं कहता हूँ कि संस्कृति हमारे चित्त को परिमित नहीं बनाती। संस्कार ऐसे होंगे तो हमें अधिक से अधिक व्यापक बनायेंगे, फैलायेंगे। इस तरह की संस्कृति में से कला का जो आशय आयेगा वह सार्वभौम होगा, उससे जीवन का विकास होगा, उसकी सुगंध फैलेगी। जीवन की सुगंध है सहजीवन। जहाँ रिश्ता नहीं, सम्बन्ध नहीं वहाँ जीवन नहीं। एकान्त में जीवन नहीं। पर हमें तो सिखाया गया कि मनुष्य से जितने दूर रहोगे, ईश्वर के उतने ही नज़दीक रहोगे। यह हमारी जातिप्रथा का सार बता रहा हूँ। मैं यदि अपनी जाति के ब्राह्मण के घर जा सकता हूँ, उसके हाथ का खाता हूँ तो श्रेष्ठ हूँ। मैं यदि उसके भी हाथ का नहीं खाता, सिर्फ़ अपने घर के लोगों के हाथ का खाता तो और भी श्रेष्ठ होता। अपनी पत्नी के हाथ का खाता हूँ तो ज़्यादा बेहतर समझा जाता और उसके भी हाथ का न खाता सिर्फ़ अपने हाथ का खाता

तो एक सीढ़ी और ऊपर चला जाता। स्वयंपाकी होना आखिरी सीढ़ी है। अपने भी हाथ का बना न खाऊँ तो स्वर्ग ही पहुँच जाऊँ। यह है वर्ण व्यवस्था जिसका गुणगान वेदों से लेकर पुराणों, दयानन्द से लेकर विनोबा तक सबने किया है। इस वर्ण व्यवस्था में यह दोष होता है कि वह मानव-विरोधी है। यह जो मनुष्य की वेदना है स्पष्ट शब्दों में तो नहीं, अस्पष्ट शब्दों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं में व्यक्त हुई है। यह जो वेदना है मनुष्य की उसकी अभिव्यक्ति कला में होती है। वेदना की भी और आकांक्षा की भी। जिस कला में आकांक्षा की अभिव्यक्ति होती है। तो वह कला कुछ अमूर्त भी बन जाती है—आदर्श की तरफ़ जाने लगती है। रवि वर्मा की कला और नंदबाबू की कला में यह फ़र्क़ है। एक में आदर्श के संकेत हैं। आनन्द के० कुमार स्वामी, कुमार स्वामी पिता का नाम था। के० में छिपा था उनका ईसाई नाम। माँ उनकी यूरोप की थी। आदर्शवाद पर उन्होंने लिखा था। एक लेख था संगीत पर। उसे पढ़कर चौंका—हारमोनियम को हटा दो। दूसरा था लेख जिसमें कहा था कि रवि वर्मा कोई कलाकार नहीं है। वह तो अनुकृति करता है सृष्टि की। कलाकार नहीं है। दो तरह के लोग हैं दुनिया में। एक तो वे जो अनुसर्जन करते हैं। सृष्टि की नक़ल करते हैं। दूसरे अपनी खुद ही सृष्टि रचते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि है तो मेरी भी एक अलग सृष्टि होगी। विश्वामित्र ने भी ऐसा एक प्रयोग किया था—लेने के देने पड़ गये। सिर के बदले नारियल बन गया। और गाय की जगह भैंस बना दी। वह कुछ कर नहीं पाया। लेकिन इन दोनों में से भिन्न एक मौलिक सृष्टि होती है। सृष्टि नहीं, प्रति-सृष्टि नहीं, वह है मनुष्य के स्वप्न की सृष्टि! मनुष्य दिव्य स्वप्न देखता है और उन्हें साकार करने आगे बढ़ता है। लेकिन मनुष्य का सपना उसकी पहुँच में तो हो सकता है, लेकिन उसकी पकड़ में नहीं। पकड़ से पहुँच की तरफ़ क़दम बढ़ाना प्रगति है। इस प्रगति का लक्ष्य क्या है? मनुष्यों को एक-दूसरे के नज़दीक लाना और उन्हें परस्पर मिलाना।

हृदय बदलें

आज मनुष्य कहाँ पहुँचा है। दुनिया सट गयी है। विज्ञान ने यह किया है। उसने मनुष्य को मनुष्य के नज़दीक लाकर रख दिया है। पर मनुष्य का हृदय नहीं बदला है। दो बिगड़ैल मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ जायें तो उनमें आलिंगन नहीं होता कुश्ती हो जाती है। कुश्ती और आलिंगन में एक समानता है। दोनों में छाती मिलानी पड़ती है। परिचय के बिना दुश्मनी भी नहीं होती। अब देखियेगा कि जीवन जिसने बनाया होगा वह कितना बलबान था। दो लोगों में झगड़ा भी होना हो तो उनमें पहले परिचय होना चाहिए। एक अंग्रेज़ तीस

साल यहाँ रहा। उत्तरप्रदेश के किसी गाँव में गया। किसी ने उसे देखकर कहा, ससुरा साहब आ गया। अंग्रेज़ ने अपने साथी से पूछा, यह गाँव वाला मेरे बारे में क्या कह रहा है। उसने समझाया कि यह आपको अपनी पत्नी का पिता बता रहा है। तो गाली समझने के लिए भी भाषा जाननी होगी। अशाय समझने के लिए भाषा की ज़रूरत होगी। झगड़े के लिए भी एक-दूसरे को जानने की आवश्यकता है।

कला की आँख

जीवन की एकता है, वही जीवन का परम सत्य है। जितना जीवन इस सृष्टि पर है, वह एक ही है। इसलिए शैक्सपियर के ड्यूक को सारी सृष्टि में सदाशय दिखायी पड़ता है। इसे मैं 'शुभ-दर्शनम्' कहता हूँ। बाल्मीकि ने कौशल्या का वर्णन जहाँ भी किया है 'शुभ दर्शनम्' विशेषण लगाया है। टीकाकार ने व्याख्या की है कि शुभदर्शन—वह जिसकी आँख सुन्दर है। मैं कहता हूँ कि आँख वही जिसकी दृष्टि सुन्दर है। बूढ़ा शिकायत करता है कि गुलाब जैसे सुन्दर फूल में भी जिसने काँटे लगा दिये वह कितना अरसिक रहा होगा। पर पोता कहता है कि जिसने इन काँटों में भी गुलाब जैसा फूल लगा दिया वह कितना रसिक रहा होगा।

यह कला की आँख है। यह श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विश्वदर्शन के लिए जो दिव्यचक्षु दिया, वह आँख है। लेकिन सब धर्मों ने, सारे संप्रदायों ने हमारी आँखें छीन ली हैं और हमें चश्मे दे दिये हैं। हमारी आँखें साबुत नहीं हैं। आज समूचे इंसान की ज़रूरत है। बचपन में हम स्कूल में पढ़ते थे। भूगोल के हमारे शिक्षक बहुत कुशल थे। उन्होंने दुनिया का नक़शा गत्ते के अलग-अलग टुकड़ों पर बनाया था। वे उन सब टुकड़ों को जमा देते थे और पूरी दुनिया का नक़शा बना देते थे। हम लोगों को वह जमाकर दिखाते थे। कहते थे इस नक़शे को बहुत अच्छी तरह से, गौर से देख लो, निहार लो। हम लोग गौर से देख लेते थे। पर हम भूल गये। किसी देश के बदले कोई देश लगा दिया। ऊपर के देश उठाकर नीचे के देश के पास जोड़ दिये आदि। वह दुनिया हमसे ठीक से जमती नहीं थी, जुड़ती नहीं थी। एक लड़का था। वह बड़ा होशियार था। अब आप उसे गांधी कह लीजिए, विनोबा कह लीजिए, दुनिया के किसी भी बड़े आदमी का नाम ले लीजिए। लेकिन वह था हमारे साथ। उसने एक टुकड़े को पलट कर देखा। उस पर मनुष्य की आकृति बनी हुई थी। लड़का ताड़ गया, एक तरफ़ मनुष्यों की आकृति बनी है और दूसरी तरफ़ दुनिया का नक़शा बना है। उसने मनुष्यों की आकृति समझकर टुकड़ों को जमा दिया! दुनिया जम गयी।

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के हिन्दी प्रकाशन

1. गांधी संस्मरण और विचार (संकलन), डिमाई आकार, मूल्य 3.00
2. गांधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन), डिमाई आकार, मूल्य 25.00
3. महात्मा गांधी की जय (संकलन), डिमाई आकार, मू० 7.50 पै०
4. व्यावहारिक वेदान्त : एक आत्मकथा, ले० सरलादेवी, मू० 20.00
5. धर्म समन्वय, ले० विनोबा, मू० 10.00
6. गांधी जीवन सूत्र, ले० श्रीकृष्णदत्त भट्ट, मू० 8.00
7. विनोबा विचार संकलन, ले० डॉ० विश्वनाथ टंडन, मू० 6.00
8. गांधीजी के तालीमी खयालात (उर्दू), ले० डॉ० सैयद अन्सारी, मू० 15.00
9. गांधी मार्ग की ओर, ले० डा० श्रीमन्नारायण, मू० 5.00
10. अहिंसा की कहानी, ले० यशपाल जैन, मू० 1.75
11. गांधी और भावी संसार, ले० कालिदास कपूर, मू० 1.00
12. गांधीजी की राह, ले० रामनाथ सुमन, मू० 1.00
13. बापू मेरी नज़र में, ले० जवाहरलाल नेहरू, मू० 1.00
14. चम्बल की बन्दूकें गांधी के चरणों में, ले० प्रभाष जोशी, अनुपम मिश्र, श्रवणकुमार गर्ग, मू० 2.00
15. कुंकुम कलश और आम्र पल्लव, ले० रामनारायण उपाध्याय,

गांधी-मार्ग के संग्रहणीय विशेषांक

1. लोकतंत्र अंक (अप्रैल 1971)
2. बांगला देश विशेषांक (जुलाई 1971)
3. शिक्षा अंक (अक्टूबर 1972)
4. गांधी दृष्टि और विगत पच्चीस वर्ष (जनवरी 1973)
5. गो-सेवा विशेषांक (सितम्बर 1976)
6. गांधी जयंती विशेषांक (अक्टूबर 1976)
7. गांधी स्मृति विशेषांक (जनवरी 1977)
8. लोक शिक्षण विशेषांक (फरवरी-मार्च 1977)
9. स्वतंत्रता अंक (अगस्त 1977)

नोट : प्रत्येक विशेषांक का मूल्य दो रुपये मात्र।

GANDHI PEACE FOUNDAION PUBLICATION

1. J. B. Kripalani. GANDHIAN THOUGHT. First edition. 1961. 281 p. Cloth. Rs. 6.50. Calcutta. Orient Longman.
2. Francis Watson and Maurice Brown. TALKING OF GANDHIJI. Paper-back reissue, 1965. 141 p. Rs. 3.50. Bombay. Bharatiya Vidya Bhavan.
3. G. Ramachandran and T.K. Mahadevan. GANDHI : HIS RELEVANCE FOR OUR TIMES. Second edition. 1967. 393 p. Cloth. Rs. 15. Bombay. Bharatiya Vidya Bhavan.
4. D.G. Tendulkar. ABDUL GHAFFAR KHAN. First edition. 1967. 550 p. Cloth. Rs. 60. Bombay. Popular Prakashan.
5. G. Ramachandran and T.K. Mahadevan. NONVIOLENCE AFTER GANDHI. First edition. 1568. 43 p. Paper. Re 1. Bombay. Bharatiya Vidya Bhavan.
6. S. Abid Hussain. GANDHI AND COMMUNAL UNITY. First edition. 1969. 151 p. Paper. Rs. 4.75 New Dehli. Orient Longman.
7. R.R. Diwakar. SAGA OF SATYAGRAHA. Revised new edition. 1969. 248 p. Cloth; Rs. 9. Paper; Rs. 7. Bombay. Bharatiya Vidya Bhavan.
8. Roy Walker. SWORD OF GOLD First edition. 1969. 295 p. Cloth. Rs. 12.50. New Delhi. Orient Longman.
9. T.K. Mahadevan. TRUTH AND NONVIOLENCE. First edition, 1970. 400 p. Cloth. Rs. 15. New Delhi. Orient Longman.
10. G. Ramachandran and T.K. Mahadevan. QUEST FOR GANDHI. First edition. 1970. 470 p. Cloth. Rs. 18. Bombay. Bharatiya Vidya Bhavan.
11. V.V. Ramana Murti. GANDHI: ESSENTIAL WRITINGS. First edition. 1970. 458 p. Cloth. Rs. 25. New Delhi, Orient Longman.
12. C.B. Dalal GANDHI 1915-1948 : A DETAILED CHRONOLOGY. First edition. 1971. 210 p. Cloth. Rs. 30. Bombay. Bharatiya Vidya Bhavan.
13. Pran Chopra. THE SAGE IN REVOLT : A REMEMBRANCE. First edition. 1972. 282. p. Cloth. Rs. 30. Bombay. Popular Prakashan.

Obtainable from

GANDHI BOOK HOUSE, RAJGHAT, NEW DELHI-110002

Digitized for Preservation
By

Gandhi Research Foundation
Gandhi Teerth, Jain Hills, Jalgaon. 425 001